आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१८ * अंक-९ * मई-२०२४

पूज्य गुरुदेवश्री
कानजीस्वामीका

१३५ वाँ

जन्म-जयंति महोत्सव

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

• जो सिद्धालय है वह देहालय है, अर्थात् जैसा सिद्धलोकमें बिराज रहे है, वैसा ही हंस (आत्मा) इस घट (देह)में विराजमान है।३६।

(श्री योगीन्द्रदेव, परमात्मप्रकाश, अधि-१, गाथा-२५)

• यह आत्मा, परमात्माके समान है। दोनोंके स्वभावमें निश्चयसे कोई अंतर नहीं है। यह आत्मा, परमानंदमें कलोल करनेवाला है। परमात्मा परम शुद्ध है, रागादिरहित वीतराग है, कर्ममलरहित निर्मल है तथा अविनाशी है।३७।

(श्री तारणस्वामी, ज्ञानसमुच्चयसार, श्लोक-७९)

• देह-देवालयमें तो स्वयं शिव बसता है, और तू उसे दूसरे देवालयमें ढूँढता है। अरे सिद्ध प्रभु! भिक्षाके लिये भ्रमण कर रहा है—ऐसा देखकर मुझे हँसी (आश्चर्य) आती है।३८।

(श्री मुनिवर रामसिंह, पाहुड दोहा, गाथा-१८६)

• परमात्मदेव देहमें स्थित होने पर भी जो देवको अन्यत्र खोजता है वह मूढ़बुद्धि घरमें भोजन तैयार होने पर भी बाहर भटकता है—ऐसा मैं मानता हूँ।३९।

(श्री अमितगति आचार्य, योगसार प्राभृत, निर्जरा अधिकार, श्लोक-२२)

• जिनदेव, देह-देवालयमें विराजमान हैं, परन्तु जीव (ईंट-पत्थरोंके देवालयों में उनके दर्शन करता है—यह मुझे कितना हास्यास्पद मालूम होता है। यह बात ऐसी ही है जैसे कोई मनुष्य सिद्ध हो जाने पर भिक्षाके लिए भ्रमण करता है।४०।

(श्री योगीन्द्रदेव, योगसार, गाथा-४३)

• जिस भगवान आत्माके केवल स्मरणमात्रसे भी ज्ञानरूपी तेज प्रगट होता है, अज्ञानरूपी अंधकारका विनाश होता है तथा कृतकृत्यता अचानक ही आनंदपूर्वक अपने मनमें प्रगट होती है। वह भगवान आत्मा इसी शरीरमें विराजमान है उसका शीघ्रतासे अन्वेषण करो। दूसरी जगह (बाह्य पदार्थोंकी तरफ) क्यों दौड़ रहे हो? ।४१।

(श्री पद्मनंदी आचार्य, पद्मनंदी-पंचविंशति, धर्मोपदेशामृत, श्लोक-१४१)

• निश्चयसे देखा जाये तो यह मेरा आत्मा भावकर्म, द्रव्यकर्म, नो-कर्म रहित शुद्ध है। मेरा आत्मा ही शुद्धात्मा है, इस देहके भीतर विराजमान है। तथापि मूर्तिक देहरहित अमूर्तिक है। यह मेरा आत्मा ही निश्चयसे परमात्मा है।४३।

(श्री तारणस्वामी, ज्ञानसमुच्चयसार, श्लोक-४४)

वर्ष-18
अंक-9

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2080
May
A.D. 2024

जैन गगनमें सुवर्णके सूर्यका उदय
'सुवर्णका सूर्य' और उसका दिव्य प्रकाश

आजसे १३५ वर्ष पूर्व....वैशाख शुक्ल दोज रविवार

जैनशासनके पुनित गगनमें आज एक देदीप्यमान चैतन्यभानुका उदय हुआ....आज सुवर्णका सूर्य उदित हुआ।

जैन गगनभानु कहान गुरुदेवकी पवित्र मुद्रा चैतन्य तेजसे चमक रही है, आनंदमय सुप्रभात वहाँ शोभायमान कर रही थी, और इस सूर्यकी वचन-किरणें आत्मिकशौर्यकी ज्योंतिसे भव्यजीवोंके लिये मुक्तिका मार्ग प्रकाशित कर रहा है। वह सूर्यकिरण अपूर्व चमकसे पूर्ण और शौर्यप्रेरक है, विभावोंके पर्देको भेदकर अंतरमें परमात्म-स्वरूपको वह प्रकाशित करती है और वह परमात्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिये शौर्यको उल्लसित करती है के अरे जीव ! तेरा आत्मा हीन या तुच्छ नहीं है किन्तु सिद्ध परमात्मा जैसा पूर्ण सामर्थ्यवाला प्रभु है...उसके लक्ष्य ले तेरा आत्मवीर्यको जागृत कर। अहो ! जिस ज्ञानभानुके एक वचनकिरणमें इतना आत्मतेज प्रकाशमान हो रहा है, तो अंतरमें उस ज्ञानभानुका प्रकाश कैसा दिव्य आनंदमय होगा !! वास्तवमें ज्ञानभानु गुरुदेव स्वयंके दिव्य ज्ञानप्रकाश द्वारा जैनशासनके आकाशको प्रकाशित कर दिया है और घोर अज्ञान अंधकारको दूर करके आनंदमय सुप्रभात उदित किया है।

हे साधर्मी बंधुओं ! चलो, सुप्रभातके इस सुनहरे सूर्यको भक्ति दीपकसे सन्मानित करें और उसकी दिव्यकिरणोंको ग्रहण करके आत्मामें ज्ञानप्रकाश प्रकट करें।

जैनशासनरूपी आकाशमें दिव्य प्रकाश करके आनंदमय
सुप्रभात प्रसारित करता यह चैतन्यभानु सदैव जाज्वल्यमान रहो ।
जैन गगनका यह सोनेरी सूर्य सहस्र किरणोंसे
सदा मुक्तिमार्ग प्रकाशित करो....

यह है गुरुदेवश्रीकी जन्मभूमि जहाँ आनंदका जन्म हुआ है

यह वैशाख सुद बीज यह पूज्य गुरुदेवश्रीके जन्मका मंगल दिन ! इस आनंद के प्रसंग पर पूज्य गुरुदेवश्रीके श्रीमुखसे प्रवाहित आनंदकी जन्मभूमि दर्शाता हुआ प्रवचन देते हुए हमें आनंद हो रहा है।

'भगवान परमात्माके सुखके अभिलाषी जीवको शुद्ध अंत:तत्त्वके आनंदका जन्मभूमिस्थान जो निज शुद्धजीवास्तिकाय उससे उत्पन्न होता जो परमश्रद्धान वह ही सम्यग्दर्शन है।' देखो, यह आत्माके आनंदका जन्मभूमिस्थान ! इसमें सम्यग्दर्शनकी अलौकिक व्याख्या है। आत्माके आनंदका जन्मभूमिस्थान जो शुद्ध जीवास्तिकाय उसमेंसे जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, वह बाह्य किसीके आश्रयसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता नहीं है।

यह भगवान परमात्मा स्वयं अतीन्द्रिय सुखका सागर है, उस परमात्माके सुखका जो अभिलाषी है ऐसे जीवको सम्यग्दर्शन होता है उसकी यह बात है; सम्यग्दर्शन होते ही उसे आनंदके विलासका जन्म होता है। वह आनंदकी जन्मभूमिस्थान कहाँ ?–कि स्वयंका जो शुद्ध जीवस्वभाव वह आनंदकी उत्पत्तिका जन्मभूमिस्थान है। ऐसे शुद्ध आत्माकी परम श्रद्धा करना वह ही सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन होते ही, भगवान सिद्ध परमात्माको जैसा सुख है वैसा ही सुखका अंश समकितीको स्वयंके वेदनमें–स्वादमें आ जाता है; अहा ! मेरे असंख्य प्रदेशमें आनंदका जन्म हुआ !! मेरे आत्माके असंख्य प्रदेश ऐसे ही आनंदसे भरपूर है।—ऐसी अंतर्मुख प्रतीति वह सम्यग्दर्शन है। अतीन्द्रिय आनंदकी उत्पत्तिका धाम ऐसा जो शुद्ध जीवसत्ता उसकी निर्विकल्प प्रतीति वह सम्यग्दर्शन है।

स्वयंका असंख्यप्रदेशी शुद्धजीवास्तिकाय वह शुद्ध अंतर्तत्त्वके विलासके–आनंदका जन्मभूमिस्थान है–किन्तु किसको वह आनंदका जन्म होता है ?—कि जो जीव भगवान परमात्माके सुखका अभिलाषी है उसे; जिन्हें इन्द्रिय विषयोंके पुण्यकी मीठाश नहीं लेकिन शुद्ध तत्त्वके आनंदकी ही अभिलाषा है ऐसा जीव अंतर्मुख होकर आनंदका अनुभव करता है। शक्तिमेंसे आनंदका नूतन जन्म होता है। यह आनंदकी उत्पत्तिकी जन्मभूमि कौनसी ?– निज शुद्धजीवास्तिकाय असंख्यप्रदेशी वह ही आत्माके आनंदकी जन्मभूमि है।

देखो, यह जन्मभूमि ! पेटमें हो उसमेंसे जन्म होता है, वैसे आत्माके अंतरपेटमें आनंदस्वभाव भरा है उसमेंसे ही आनंदका जन्म होता है। अरे जीव बाह्यमें तेरा आनंद नहीं है, तेरा आत्मा ही तेरी आनंदकी जन्मभूमि है। अंतरके आनंदके विलासका उत्पत्तिस्थान स्वयं शुद्ध परमात्मतत्त्व ही है। उससे उत्पन्न होती जो परम श्रद्धा वह सम्यग्दर्शन है। अहा ! ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर आत्माके प्रदेश प्रदेशमें आनंदका जन्म हुआ, असंख्य प्रदेश सुखमें मग्न गये। आनंदका जन्मधाम असंख्यप्रदेशी निज परमात्म तत्त्व वह ही सम्यग्दर्शनका कारण है। उसमें यह बात भी आ गयी कि सम्यग्दर्शन होने पर ऐसे आनंदका जन्म होता है, असंख्य प्रदेशमें आंशिक शुद्धता प्रगट हो जाती है। अंतरस्वभावके आश्रयसे जो सम्यक्श्रद्धा प्रगट हुई उसे 'परम श्रद्धान' कहकर यहाँ मोक्षमार्गका निश्चय सम्यग्दर्शन बतलाना है। अंतरमें ऐसी दशा प्रगट करे तब तो चौथे गुणस्थानमें अविरति सम्यग्दृष्टि होता है और उसे धर्म प्रारम्भ होता है। ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शन बिना मोक्षमार्गकी या धर्मकी शुरूआत भी होती नहीं है।

सम्यग्दर्शन होनेकी योग्यतामें यहाँ 'भगवान परमात्माके सुखका अभिलाषी जीव' लिया है। मूढ़ अज्ञानी जीव शरीरका सुख, कुटुम्बका सुख, खाने-पीनेमें सुख, पैसाका सुख—इस प्रकार इन्द्रिय विषयोंमें सुख मानता है, लेकिन 'भगवान परमात्माका सुख' कैसा होता है उसे जानते भी नहीं है। बाह्य विषयों रहित परम आत्मिक सुख....आत्माका अतीन्द्रिय सुख...उसकी जिन्हें अभिलाषा है ऐसे जीवको आनंदकी जन्मभूमिरूप स्वयं शुद्ध आत्माकी श्रद्धा द्वारा सम्यग्दर्शन होता है... और यह सम्यग्दर्शन होने पर अपूर्व आनंदका जन्म होता है। इस प्रकार आनंदकी जन्मभूमिमेंसे आनंदका जन्म होता है यह कर्तव्य है।

जय हो...यह आनंदभूमिमें जन्म लेनेवाले अतीन्द्रिय आनंदका....'

'जय हो...उस आनंदभोक्ता सद्गुरुदेवकी....'

प्रभु ! इस विश्वमें उत्तममें उत्तम पदार्थ आत्मा है और ऐसा सर्वोत्तम जिन्होंने हमें बतलाया उनके उपकारका कथन ही जहाँ कर नहीं सकते तो उनके असीम उपकारोंका प्रत्युपकार करनेका कार्य तो असंभवित ही है उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि जैसे जैसे हम भक्तोंको हमारे हृदयमें सर्वोत्कृष्ट स्थानमें विराजमान आपश्रीके प्रति कृतज्ञताकी उग्र भावनासे अधिकसे अधिक अर्पणता आती है वैसे वैसे हम भक्तोंके पर आपश्रीके प्रति असीम उपकार वृद्धिगत होता जाता है।–ऐसी भावना सह आजके इस १३५वीं जन्मजयंतीके मंगल अवसर पर श्रद्धाभक्तिसे आपको कोटि कोटि वंदन करते हैं।

–मुमुक्षु समाजकी ओरसे संपादक

श्री समयसारजी शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(समयसार गाथा–३२०)(गतांकसे आगे)

* अक्रिय वस्तुमें समस्त क्रियाका अभाव *

इस प्रकार सिद्धांत में कहा है कि 'निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः' अर्थात् शुद्धपारिणामिक (भाव) निष्क्रिय है, निष्क्रिय का क्या अर्थ है? (शुद्धपारिणामिक भाव) बंधके कारणभूत जो क्रिया-रागादि परिणति, उस-रूप भी नहीं है और मोक्ष के कारणभूत जो क्रिया-शुद्धभावकी परिणति उसरूप भी नहीं है। इसलिये ऐसा जाननेमें आता है कि शुद्धपारिणामिकभाव ध्येयरूप है, ध्यानरूप नहीं। किसलिये? क्योंकि ध्यान विनश्वर है (और शुद्ध पारिणामिकभाव तो अविनाशी है)। श्री योगीन्द्रदेवने भी कहा है कि 'ण वि उपज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ। जिउ परमत्थे जोइया जिणवर एउ भणेइ॥' (अर्थात् हे योगी! परमार्थसे जीव उत्पन्न नहीं होता है और मरता भी नहीं है और बंध-मोक्षको भी करता नहीं है–ऐसा जिनवर कहते है।) —गुजराती टीका

आत्माका जो त्रिकाली पारिणामिक ध्रुवस्वभाव उसमें तो मोक्षका कारण नहीं है, जो द्रव्यवस्तु है वह मोक्षका कारण नहीं, क्योंकि वह तो अक्रिय वस्तु है। मोक्षमार्गका जो परिणमन होता है, द्रव्यमें नजर करते–दृष्टि करते जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमन होता है वह पर्याय है, वह पर्याय मोक्षका कारण है, वस्तु मोक्षका कारण नहीं, वस्तु तो ध्रुव है।

श्री जयसेनाचार्य कहते है कि धवलादि सिद्धांतमें कहीं पर कहा है कि त्रिकाली ध्रुववस्तु उत्पाद-व्यय बिनाकी निष्क्रिय है। उसमें मोक्षके मार्गकी अथवा बंधमार्गकी क्रियाएँ नहीं है। द्रव्य है वह अक्रिय है, उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तम् सत्। वस्तुमें उत्पाद-व्यय बिनाकी जो ध्रुववस्तु है वह अक्रिय है इसलिये कोई परिणमन, बदलना अथवा मोक्षमार्गकी क्रिया उसमें नहीं है। जो वस्तु है वह निष्क्रिय है, अक्रिय है और जो निश्चय मोक्षमार्ग है वह क्रिया है। जो ध्रुव वस्तु है उस पर दृष्टि करने पर सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप, वीतरागी परिणमन है वह निश्चय

मैं राग नहिं, मैं द्वेष नहिं, नहिं मोह, तिन कारण नहीं। परमागम
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं॥८०॥ श्री नियमसार

मोक्षमार्ग है और उस निश्चय मोक्षमार्गको साधना वह व्यवहार है।

जिनेश्वरदेव ऐसा कहते है कि स्वरूपका अनुभव होकर प्रतीत होनेरूप सम्यग्दर्शन, स्वसंवेदनज्ञान और स्वरूप-आचरणरूप जो निश्चय मोक्षमार्ग कि जो अपूर्वदशा है वह भी व्यवहार है, क्योंकि पर्याय है वह व्यवहार है और द्रव्य है वह निश्चय है। द्रव्य है वह अक्रिय है और वह निश्चय है तथा निश्चय मोक्षमार्गकी साधना करना वह व्यवहार है क्योंकि वह पर्याय है।

भगवान पूर्णानंदका नाथ तो निष्क्रिय है अर्थात् शुद्ध-पारिणामिकभाव निष्क्रिय है। ध्रुव नित्य रहनेवाला तत्त्व, उत्पाद-व्यय रहित निष्क्रिय है। निष्क्रिय अर्थात् क्या ?–जड़की क्रिया न कर सके इसलिये निष्क्रिय ?–निष्क्रियका अर्थ क्या ?–कि पुण्य-पापका भाव जो बंधके कारण की क्रिया है उस क्रियासे रहित है इसलिये निष्क्रिय है। बंधके कारणकी क्रियारूप रागादि की परिणति वह पारिणामिकभाव मैं नहीं है, वह क्रिया पर्यायमें है। पारिणामिकभावको भगवान रागादिकी परिणतिसे रहित है, सम्यग्दर्शनका ध्येय जो निष्क्रिय द्रव्य वस्तु है वह रागादिकी बंधकी क्रियासे–परिणति से रहित है।

* ध्येयरूप निष्क्रिय ध्रुवमें बंध-मोक्षके कारणभूत क्रियाका अभाव *

बंधके कारणरूप क्रिया-रागादि परिणति, उसरूप पारिणामिकभाव नहीं है, सम्यग्दर्शनका विषय जो ध्रुव वह रागादिकी क्रियासे रहित है और मोक्षके कारणभूत जो क्रिया–शुद्धभावनारूप परिणति, त्रिकाली ध्रुव स्वभावकी भावनारूप दशा, निर्मल पर्याय वह मोक्षके कारणभूत क्रिया है वह भी द्रव्यमें नहीं है; सम्यग्दर्शनकी क्रिया द्रव्यमें नहीं है। सम्यग्दर्शनका विषय ध्रुव है लेकिन उसमें सम्यग्दर्शनकी क्रिया नहीं है। वैसे तो मोक्ष और बंधके परिणामसे भी रहित द्रव्य है, लेकिन अभी द्रव्यको निष्क्रिय बतलाना है इसलिये बंधके कारणभूत क्रिया और मोक्षके कारणभूत क्रिया ध्रुवमें नहीं ऐसा कहा है।

मोक्षके कारणभूत जो क्रिया, कौनसी क्रिया ?–कि शुद्धभावकी परिणति–पुण्य-पापकी परिणति बिनाकी वीतरागी परिणति वह मोक्षके कारणभूत क्रिया है। ध्रुवके ध्येयसे प्रगट हुई परिणतिरूप क्रिया वह भी द्रव्यमें नहीं है।

बंधके कारणभूत दया, दानके परिणामरूप क्रिया है वह द्रव्यमें नहीं और मोक्षके कारणभूत शुद्ध परिणतिरूप जो क्रिया है वह क्रिया भी द्रव्यस्वभावमें नहीं है। इसलिये ऐसा

मैं क्रोध नहिं, मैं मान नहिं, माया नहीं, मैं लोभ नहिं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमोदक मैं नहीं ॥८१॥

जाननेमें आता है कि शुद्ध पारिणामिकभाव ध्येयरूप है लेकिन ध्यानरूप नहीं। त्रिकाली निजानंद प्रभु सम्यग्दर्शनके ध्येयरूप है लेकिन ध्यानरूप नहीं; सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रमें त्रिकाली वस्तु ध्येय है किन्तु त्रिकाली वस्तुके अवलम्बनसे प्रगट हुई अतीन्द्रिय आनंदकी क्रिया वस्तुमें नहीं। इसलिये ऐसा जाननेमें आता है कि शुद्ध पारिणामिक प्रभु ध्येयरूप है, ध्यानरूप नहीं है।

शुद्ध-पारिणामिक वस्तु ध्येय है, ध्यानमें लेने लायक ध्येय है लेकिन वह ध्यानरूप नहीं; ध्यानमें लेने लायक त्रिकाली द्रव्य है। इसलिये शुद्ध-पारिणामिकभाव ध्यानरूप नहीं ऐसा कहकर आगे शुद्धपर्यायको कथंचित् भिन्न कही थी वह बात यहाँ सिद्ध की। अनंत शक्तिका सम्राट ऐसा जो भगवान आत्मा वह सम्यग्दर्शनका ध्येय है लेकिन सम्यग्दर्शनरूप ध्यान उसमें नहीं है। सम्यग्दर्शन ध्यान है और त्रिकाली वस्तु ध्येय है। इस प्रकार स्वसंवेदनज्ञान-शास्त्रज्ञान नहीं, परलक्षीज्ञान नहीं–वह ध्यानरूप है और निजानंद प्रभु ध्येयरूप है वह ध्यानरूप नहीं क्योंकि ध्यान विनश्वर है, क्योंकि निश्चय मोक्षमार्ग है वह पर्याय है और मोक्ष होने पर मोक्षमार्गकी पर्याय नाश हो जाती है–व्यय हो जाती है। शुद्ध-पारिणामिकभाव तो अविनाशी है, कोई परिणमन होना अथवा परिणमनका अभाव होना ऐसा उसमें नहीं है।

* जिनवरदेव जीव किसे कहते हैं ? *

श्री परमात्मप्रकाशकी ६८वीं गाथामें योगीन्द्रदेव कहते है कि जिनवरदेव ऐसा कहते है कि जीव कि जिसे हम निष्क्रियतत्त्व कहते है वह पर्यायमें आता नहीं है, पर्यायरूप उत्पन्न होता नहीं है। जिनवरदेव ऐसा कहते है कि हे योगी ! परमार्थे जीव उत्पन्न होता नहीं, अर्थात् कि मनुष्य, देव, तिर्यंच, नारक अथवा सिद्धगतिमें उत्पन्न होता नहीं है। अनंत तीर्थंकरों ऐसा कहते है कि परमार्थे जीव उत्पन्न होता नहीं। जिसे निश्चय आत्मा कहते है उसे नियमसार की गाथा ३८में ऐसा कहा है कि त्रिकाली परमात्म स्वरूप वह ही आत्मा है। पर्याय का आत्मा है वह त्रिकाली–अपेक्षासे है। व्यवहार आत्मा अभूतार्थ है, असत्यार्थ है।

जिनवर ऐसा कहते हैं कि निष्क्रिय ध्रुववस्तु आत्मा उसे कहते है वह पर्यायमें कभी आता नहीं है। केवलज्ञानकी पर्यायरूप ध्रुव कदापि उत्पन्न होता नहीं है, वह तो पर्याय उत्पन्न होती है। परमार्थसे जीव उत्पन्न भी नहीं होता, मरता भी नहीं है। सिद्धगतिकी पर्यायका दूसरे समय में व्यय होता है वह त्रिकाली ध्रुवमें नहीं है। पर्यायका उत्पन्न होना और पर्यायका व्यय

(शेष देखे पृष्ठ २१ पर)

इस भेदके अभ्याससे माध्यस्थ हो चारित लहे।
चारित्रदृढ़ता हेतु हम प्रतिक्रमण आदिक अब कहें ॥८२॥

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-३३ (गाथा-२९)

भेदविज्ञानका महा प्रताप

अब भावुक होकर शिष्य पुनः प्रश्न करता है कि हमने शास्त्रमें सुना है कि जीवको शरीरादिके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है और इसलिये ही जीवका मरण, रोगादि होता है। तो अब हम उस मरण-रोगादिका किस प्रकार नाश करें?

इस शंकाका समाधान आचार्यदेव स्वयं ही २९वीं गाथामें करते हैं :

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले॥२९॥

क्या भीति ज्यां अमर हुं, क्यां पीडा वण रोग?
बाल, युवा, नहि वृद्ध हुं, ए सहु पुद्गल जोग. २९.

भाई ! मृत्यु पुद्गलको है, जन्म पुद्गलको है, रोगादि पुद्गलको है और बालयुवान-वृद्धादि अवस्था भी पुद्गलकी है। भगवान आत्मा तो उस सर्वसे रहित शुद्ध पवित्र ज्ञानानंद स्वरूप है।

आनंदघनजी कहते है कि, 'अब हम अमर भये ना मरेंगे या कारण मिथ्यात्व दीयो तज... क्यों कर देह धरेंगे ?...अब हम...' आत्मा तो अमर ही है लेकिन अब तक शरीरके वियोगको मैं अपना मरण मानता था वह मिथ्या था ऐसा जाना इसलिये ऐसा निश्चित हुआ कि मैं अमर हूँ।

अज्ञानी जीव शरीरके नाशसे स्वयंका नाश, शरीरके जन्मसे स्वयंका जन्म और शरीरमें रोग आने पर स्वयंको रोगी मानता था। वह अज्ञान, दुःख और संसार था। अब जाना कि मैं तो शरीरसे भिन्न, जन्म-मरण रोगादि रहित तत्त्व हूँ। मैं तो अजर-अमर हूँ ऐसी यथार्थ श्रद्धा होने पर मिथ्यादर्शन और संसार तूटने लगता है।

पाँच इन्द्रिय, मन-वचन-काया, श्वास और आयुष्यको प्राण कहते है और उस प्राणके

रे वचन रचना छोड़ रागद्वेषका परित्याग कर।
ध्याता निजात्मा जीव तो होता उसीको प्रतिक्रमण॥८३॥

उच्छेदको मरण कहते है। तो धर्मी विचार करता है कि मुझमें यह दस प्राण ही नहीं तो उसके उच्छेदरूप मरण मुझे कैसे हो ? मेरे प्राण तो ज्ञान-दर्शन-आनंदादि है उस प्राणका कदापि नाश होता नहीं है। इसलिये ज्ञानादि गुणसे मेरा जीवन है। शरीर, वाणी पुण्य-पापादि विकारसे मेरा जीवन नहीं है।

मेरा मृत्यु नहीं तो डर कैसा ? मुझे व्याधि नहीं तो पीडा कैसी ? मैं तो भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य ज्ञानज्योति आनंद आदिके धरनेवाला हूँ। 'आरोग्य बोधिलाभं' राग रहित मैं आरोग्यवाली वस्तु हूँ, विकार और शरीरके प्राण रहित मैं चैतन्य रतन हूँ ऐसी जो बोधि अर्थात् ज्ञानका लाभ वह मेरा आरोग्य है, निरोगता है। शरीरका रोग या निरोगता वह आत्माको स्पर्श करती भी नहीं है।

मुमुक्षु :–आपने तो हमें अमर और नीरोगी बना दिया है !

पूज्य गुरुदेवश्री :–अरे ! बनाया नहीं, ऐसा ही है वह तुझे बतला रहे है। सूरजका कदापि मृत्यु होता है ? वह तो है ही, कदापि मृत्यु होती नहीं। वैसे भगवान आत्मा शुद्ध आनंदकंद ही है, कदापि उसकी मृत्यु होती नहीं। शरीर और आत्मा भिन्न ही है लेकिन क्षेत्रसे भिन्न होने पर लोग मृत्यु कहते है और नवीन शरीरके संयोगको लोग जन्म कहते है, शेष आत्माको जन्म-मरण है ही नहीं।

मैं तो आत्मा हूँ; न बालक हूँ कि न वृद्ध हूँ। शरीरकी कोमल अवस्था को बचपन कहते है, शरीरकी मजबूत अवस्थाको युवानी कहते है और शरीरकी निर्बल अवस्थाको वृद्धावस्था कहते है। वह सभी जड़ पुद्गलकी अवस्था है। भगवान चैतन्यसूर्यकी वह कोई भी अवस्था नहीं है। इसलिये युवानीमें होनेवाला विकार भी मेरा नहीं है और वृद्धावस्थामें आनेवाली कमजोरी भी मेरी नहीं है। इसलिये सुख-दुःखकी होनेवाली अवस्था भी मेरी नहीं है ऐसा धर्मी जानते है।

२७वें श्लोकमें आया था कि मैं एक, शुद्ध, निर्मम, ज्ञानी-योगीगम्य और कर्मोदयसे रहित हूँ। ऐसे स्वरूपका जिसने निर्णय किया है वह ऐसा जानता है कि बाल, युवान, वृद्धावस्था वह मेरी नहीं है। मैं तो बेहद ज्ञानानंद स्वभावी चैतन्यसूर्य हूँ। भूत-भविष्य-वर्तमानकी सभी अवस्थामें नित्य रहनेवाला मैं अनादि-अनंत हूँ। मैं स्वको और परको जाननेवाला स्व-परप्रकाशकस्वभावी हूँ; परद्रव्यका मात्र जाननेवाला हूँ 'वह मेरा और मैं उसका' ऐसा मिथ्या अभिप्रायसे रहित निर्मम हूँ और मरणसे रहित शाश्वत हूँ। ऐसा मेरा स्वरूप है ऐसा जिसने अंतरसे स्वानुभवपूर्वक निश्चित किया है वह धर्मी है।

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

धन्य है उनको.... जो स्वानुभवकी चर्चा करते हैं

चैतन्य स्वभावके श्रवणमें मुमुक्षुका उल्लास

'समयसार'की चौथी गाथामें कहते हैं कि—

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥

काम-भोग एवं बंधनकी कथा तो सभी जीवोंने पूर्वमें अज्ञानीके रूपमें अनंतबार सुनी है, परिचयमें ली है और उसका अनुभव किया है; परंतु परसे विभक्त ज्ञानानंदस्वरूप एकाकार आत्माकी बात पूर्वमें कभी सुनी नहीं है, परिचयमें ली नहीं है और उसका अनुभव भी किया नहीं है। देखो, मात्र शब्द कानमें पड़ना या नहीं पड़ना उसे यहाँ श्रवणके रूपमें नहीं लिया है, परंतु जिसे जिसकी रुचि-भावना-अनुभव है उसे उसका ही श्रवण है। भले शुद्धात्माके शब्द कानमें पड़ते हो, परंतु यदि अंतरमें रागकी मीठास-भावना और अनुभव विद्यमान है तो वह जीव शुद्धात्माकी कथाका वास्तवमें श्रवण नहीं कर रहा है परंतु रागकथाका ही श्रवण कर रहा है। शुद्धात्माको लक्षमें ले तो ही शुद्धात्माका श्रवण किया कहा जायेगा।

प्रश्न :—बहुत जीव ऐसे हैं कि अभी तक कभी त्रसपर्याय ही पाई नहीं है, अतः उन्हें कान ही मिले नहीं है, फिर भी उन जीवोंने भी कामभोग बंधनकी कथा अनंतबार सुनी—ऐसा कैसे कहा जा सकता है?

उत्तर :—उसमें भी उपरोक्त न्याय ही लागू हो रहा है। जिस प्रकार शुद्धात्माकी जिसे रुचि नहीं है उसे शुद्धात्माके शब्द कानमें पड़े होनेके बावजूद भी उसे शुद्धात्माका श्रवण नहीं कहते हैं परंतु बंधकथाका श्रवण ही कहते है क्योंकि उस समय भी उसके भावश्रुतमें तो बंधभावका ही पोषण हो रहा है; उसी प्रकार निगोद इत्यादिके जीवोंको बंधकथाके शब्द भले ही कानमें नहीं पड़ रहे हैं, परंतु उसके भावमें तो क्षण-क्षण बंधभावका सेवन चल ही रहा है, अतः वे जीव बंधकथा ही सुन रहे है—ऐसा कहा जाता है। अर्थात् जिस उपादानके

छोड़े समस्त विराधना आराधनारत जो रहे।
प्रतिक्रमणमयता हेतुसे प्रतिक्रमण उसको ही कहें॥८४॥

भावमें जिसका पोषण है उसका ही वह श्रवण कर रहा है, ऐसा कहा जाता है। भाई ! तेरे भावकी रुचि यदि नहीं पलट रही है तो खाली शब्द तेरा क्या कर लेगे ? यहाँ तो कहते हैं कि अहो ! एकबार भी अंतर्लक्ष करके चैतन्यके उल्लासपूर्वक उसकी बात जिसने सुनी उसके भवबंधन टूटने लगे; उसने ही सच्चा सुना, कहा जायेगा। इस अपेक्षासे कहते हैं कि धन्य है उनको कि जो स्वानुभवकी चर्चा कर रहे है। द्रव्यलिंगी मुनि होकर नौ पूर्व पढ़ ले, ग्यारह अंग जाने, परंतु अंतरमें यदि पुण्य-पापसे पार चैतन्यस्वरूपकी दृष्टिमें नहीं लिया तो यहाँ कहते है कि शुद्धात्माकी बात उसने सुनी ही नहीं है; उसने चैतन्यका पक्ष नहीं किया है परंतु वह रागके पक्षमें ही रुका है। उसे रागमें उल्लास आया, परंतु चैतन्य-स्वभावमें उल्लास नहीं आया... स्वभावमें उल्लास आये तो उस ओर वीर्य झुककर उसका अनुभव करेगा ही। अहा, मैं तो चैतन्यस्वरूप... वीतरागी संतोंकी वाणी मेरे चैतन्यस्वरूपका ही प्रकाश कर रही है, इस प्रकार अंतरमें चैतन्यका भणकार (आसार, झंकार) लाकर उत्साहपूर्वक-वीर्योल्लासपूर्वक जिसने सुना वह अल्पकालमें स्वभावके उल्लासके बलसे मोक्षको प्राप्त कर लेगा। चैतन्यकी ऐसी महिमा आना उसका नाम मांगलिक है।

ऊपर पद्मनंदी पच्चीसीकी जो गाथा कही है वह एकत्वस्वरूप-अधिकारकी गाथा है; उसमें कहा कि इस चैतन्यके एकत्वस्वरूपके प्रति प्रसन्नता और उल्लास लाकर, तथा जगतका उल्लास छोड़कर परभावका प्रेम छोड़कर उसका जिसने श्रवण किया–'पढ़ लिया' ऐसा नहीं; किन्तु 'श्रवण किया' अर्थात् श्रवण करनेवाले ज्ञानी संतके पाससे विनयपूर्वक सुना वह जीव जरूर स्वानुभव प्रकट करके मुक्ति प्राप्त करता है। अहा ! देखो यह आत्मस्वरूप महिमा। पंडित टोडरमलजीने २०० वर्ष पहले साधर्मीके ऊपर लिखे हुए पत्रमें इस गाथाका संदर्भ दिया है। उस समयके गृहस्थ भी कितने अध्यात्मप्रेमी थे–यह बात इस पत्रसे ख्यालमें आ रही है। समयसारकी पाँचवीं गाथामें आचार्यदेव कह रहे हैं कि आत्माका एकत्व-विभक्त स्वरूप कि जिसे जीवोंने पूर्वमें कभी सुना नहीं है, अनुभव किया नहीं है, उस एकत्व-विभक्तको मैं अपने आत्माके समस्त वैभव द्वारा इस समयसारमें दिखा रहा हूँ, हे श्रोताजन ! तुम अपने स्वानुभव द्वारा उसे प्रमाण करना...मात्र शब्दों द्वारा नहीं परंतु स्वानुभव द्वारा प्रमाण करना...हम जैसा भाव कह रहे हैं वैसा भाव अपने आत्मामें प्रगट करना। शब्दोंकी ओर देखकर रुक मत जाना; किन्तु वाच्यकी ओर झुककर शुद्धात्माका स्वानुभव

जो जीव त्याग अनाचरण, आचारमें स्थिरता करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतुसे प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८५॥

करना। यहाँ पर भी पत्रकी शुरूआतमें ही स्वानुभवका स्मरण किया है कि स्वानुभव द्वारा सहजानंदकी वृद्धि चाहता हूँ।

भगवान आत्मा चैतन्यवस्तु है, उसके मूल स्वरूपमें तो रागका भी प्रवेश नहीं है। अहा ! मात्र चैतन्यवस्तु परसे तो निरपेक्ष ही है और परभावोंसे (परके लक्षसे हो रहे अपने विभावभावोंसे भी निरपेक्ष–उसके प्रति अंतरमें उल्लास लाकर ज्ञानीके श्रीमुखसे उसकी बात जिसने सुनी उसका परिणमनचक्र मोक्षकी तरफ घूम गया, अल्पकालमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा केवलज्ञान प्रकट करके वह मोक्ष प्राप्त करेगा। चैतन्यकी कोई अचिंत्य अपार महिमा है उस महिमाको जिसने लक्षगत की उसने अपने आत्मामें मोक्षके बीजोंकी रोपाई कर दी। इस प्रकार पत्र के उपोद्घातमें चैतन्यस्वभावकी एवं उसके स्वानुभवकी महिमा करके फिर सामनेवाले साधर्मीके पत्रका उत्तर देते हुए लिख रहे हैं कि–

'भाईश्री, आपने जो प्रश्न लिखे हैं उनके उत्तर मेरी बुद्धि अनुसार यत्किंचित् लिख रहा हूँ ऐसा समझियेगा; तथा अध्यात्म-आगम के चर्चागर्भित पत्र तो शीघ्र-शीघ्र देते रहियेगा। प्रत्यक्ष मिलना तो कभी होना होगा तब हो जायेगा और निरंतर स्वरूपानुभवमें रहियेगा। श्रीरस्तु।'

यहाँ तक पत्रकी भूमिका है और बादमें स्वानुभव इत्यादि से सम्बन्धित चर्चा लिखी है।

देखो, इसमें प्रथम तो अपनी निर्मानता बताई है; कहाँ शास्त्रोंकी अगाधता और कहाँ मेरी अल्पबुद्धि। इसलिये लिखा है कि तेरी बुद्धि अनुसार में यत्किंचित् लिख रहा हूँ। गणधर भगवंतों का तथा मुनिवरोंका तो अगाध अपार सामर्थ्य है स्वानुभवका विषय उनके ज्ञानमें तो स्पष्ट झलकता है। कहाँ उनकी अगाध बुद्धि और कहाँ मेरे ज्ञानकी अल्पता। फिर भी स्वानुभवकी चर्चाके प्रेमवश कह रहे हैं कि मैं अपनी बुद्धि अनुसार आपके प्रश्नोंका यत्किंचित् उत्तर लिख रहा हूँ।

पुनश्च साधर्मीके साथ ऐसी आध्यात्मिक तत्त्वचर्चाका प्रेम कितना ज्यादा है। इसलिये लिख रहे हैं कि भाईश्री ! अध्यात्मकी ऐसी चर्चा से भरे हुए पत्र बारंबार लिखते रहियेगा। और साधर्मियोंसे प्रत्यक्ष मिलनकी भावना भी भाई है। लेकिन ऐसा संयोग बन पाना यह तो उदयाधीन है, इसलिये लिख रहे हैं कि 'मिलाप तो होना होगा तब होगा। उस जमानेमें कोई आजकी तरह रेल्वे या बलून (विमान) नहीं थे कि एक-दो दिनमें जहाँ जाना हो वहाँ

(शेष देखे पृष्ठ २१ पर)

उन्मार्गका कर परित्यजन जिनमार्गमें स्थिरता करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतुसे प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८६॥

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

ज्ञेय अधिकार

किसीको केवलज्ञान पर्यायका उत्पाद हो, कोई करोड़पूर्व चारित्रका पालन करके मिथ्यात्वी हुआ हो उसे मिथ्यात्वका उत्पाद हो, किसीको निगोददशारूप उत्पाद हो, किसीको सिद्धदशारूप उत्पाद हो, किसीको सम्यग्दर्शनरूप उत्पाद हो, किसीको मिथ्यात्वरूप उत्पाद हो, परन्तु उन सबको उत्पादरूप एक लक्षणसे समानता है।

छहों द्रव्यकी उत्पादपर्यायको लक्षमें लें तो सबके चाहे जो प्रकार हों परन्तु उत्पादलक्षणसे सब एक समान हैं। वैसा 'है'पना देखनेमें वीतरागता है क्योंकि उसमें शुद्ध–अशुद्ध, छोटा–बड़ा कोई भेद जाननेकी बात नहीं है।

किसीको क्षयोपशमपर्यायका व्यय, किसीको मिथ्यात्वपर्यायका व्यय, किसीको सम्यग्दर्शनपर्यायका व्यय, तथा पुद्गलमें सुगन्धपर्याय अथवा दुर्गन्धपर्यायका व्यय, विश्वमात्रकी सर्व व्यय पर्यायोंका एक व्ययलक्षणमें समा जानेकी अपेक्षासे समानपना है। सामान्य महासत्तारूपसे देखो या विशेष अवांतरसत्तारूपसे देखो—विषमता देखनेकी बात नहीं है।

ज्ञान ज्ञेयको जानता है, अकेला ज्ञातामात्र वीतरागभाव खड़ा रखता है।

दीक्षा लेनेके पश्चात् ऋषभदेव भगवानको हजार वर्षमें, बाहुबलि भगवानको एकवर्षमें और भरत चक्रवर्तीको दो घड़ीमें केवलज्ञान प्रगट हुआ। किसीको देशे उणा करोड़ पूर्व तक संयम पालन करनेके पश्चात् केवलज्ञान हुआ अथवा किसीको घोर उपसर्गके पश्चात् केवलज्ञान हुआ तो उनमें कौन अच्छा ? तो कहते हैं कि—सबने एक ही प्रकारसे केवलज्ञान उत्पन्न किया है, उसमें विषमता नहीं है।

इस व्यक्तिको बहुत दिनोंसे समझा रहा हूँ, परन्तु नहीं समझता, इसलिए बुरा, दूसरा

कर शल्यका परित्याग मुनि निःशल्य जो वर्तन करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतुसे प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८७॥

व्यक्ति तुरन्त समझ गया, इसलिए अच्छा—ऐसी विषमता ज्ञेयको ज्ञेयरूप जाननेवालेको नहीं रहती।

अनन्तकाल पहले सिद्ध हुए वे अधिक सुखी और कुछ ही काल पहले सिद्ध हुए वे अल्प सुखी—ऐसा होगा ? नहीं। स्वभाव पूर्ण हुआ उस अपेक्षासे सब समान ही हैं। ज्ञानी कहीं किसीको, किसीप्रकार उल्टा–सीधा नहीं करना चाहता। ज्ञानका स्वभाव परमें फेरफार करनेका नहीं है। कोई माने कि तीव्र राग है, उसे मन्द करूँ, परन्तु वह कैसे–किस प्रकार होगा ? तीव्र रागके समय वह तीव्र ही है, दूसरे समय तो व्यय होगा ही, ज्ञान क्या करेगा ? जैसा ज्ञेय है उसे मात्र जाननेकी शक्ति ज्ञानकी है, अन्य कुछ ज्ञानमें नहीं है। अहा ! जाननेमें तो जानना ही आता है। अशुभ राग हुआ तो ऐसा क्यों ? —ऐसा ज्ञानमें नहीं है, वह तो ज्ञेयमात्र है। ऐसा जाने वही सुखी होनेका उपाय है।

ज्ञेयमें ऐसा क्यों ? अथवा उसमें कुछ करना—ऐसा ज्ञानका स्वभाव नहीं है। मिथ्याज्ञानका जगतमें कोई ज्ञेय नहीं है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि मानता है वैसा ज्ञेय विश्वमें नहीं है। मिथ्यात्वी मानता है कि मुझे निमित्तसे लाभ–हानि होते हैं, कर्मसे राग–द्वेष होते हैं—तो वैसा वस्तुस्वरूप नहीं है। इसलिए मिथ्याज्ञानका जगतमें कोई विषय नहीं है। जैसा ज्ञेय है वैसा जाने तो वह ज्ञान सम्यक् है।

सब सत् है—ऐसा जाना उसमें वीतरागता है।

एकत्व–महासत्तारूपसे एक है।

अनेकत्व–अवांतरसत्तारूपसे–विशेषरूपसे अनेक भी है। महासत्ता सर्व पदार्थ स्थित है, अवांतरसत्ता एक पदार्थ स्थित है, महासत्ता विश्वरूप है, अवांतरसत्ता एकरूप है।

महासत्ता अनन्तपर्यायरूप है, अवांतरसत्ता एक पर्यायरूप है।

महासत्ता जीव द्रव्य, पुद्गलद्रव्यस्वरूपरूप सबमें वर्तती है। तथा अवांतरसत्ता–द्रव्यसत्ता, अनादि–अनन्त, पर्यायसत्ता और सादि–सांत स्वरूपसत्ता—ऐसे तीन प्रकारसे है। इसप्रकार ज्ञेयको यथार्थ जाने उसको वीतरागता है। (क्रमशः) ✻

जो साधु छोड़ अगुप्तिको त्रय-गुप्तिमें विचरण करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतुसे प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८८॥

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

(प्रवचन : १)

तत्त्वनिर्णयकी दुर्लभता

कोई पूछे कि जिस सच्चे ज्ञानके होने पर आलस्य वगैरह समस्त दोष दूर हो जाते हैं वह सच्चा ज्ञान कैसे होता है ? उसके समाधानके लिए कहते हैं कि सत् शास्त्रका श्रवण, धारण, विचार और अनुप्रेक्षापूर्वक अभ्यास करना चाहिए। सत् शास्त्र सुननेके साथ धारण होना चाहिए। जीवोंको सच्चा सुख चाहिए है और वह सुख सर्व कर्मोंके नाश होने पर प्रगट होता है। कर्मोंका नाश चारित्र होने पर होता है और चारित्र सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसे होता है, तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सत्शास्त्रोंके श्रवण, धारण करनेसे होता है।

इसमें धारण करनेकी मुख्यता है। यदि पूछा जाय कि भाई, सबेरे तुमने समयसारकी चर्चामें क्या सुना था तो उत्तर मिलता है कि याद नहीं रहा, किन्तु ऐसे श्रवणसे काम नहीं चलेगा। संसार-व्यवहारमें यदि किसीसे कुछ ऋण लेना बाकी हो तो वह उसे बराबर याद रखता है, उस कर्जदारको देखते ही याद आ जाता है कि इससे कर्ज लेना बाकी है। जिस प्रकार ऋण सम्बन्धी धारणा बना रखी है उसी प्रकार मुमुक्षु जीव सत् शास्त्रको यथार्थरीत्या धारण करे, और धारण करनेके बाद उस पर विचार करना चाहिए, तत्पश्चात् आम्नाय अर्थात् उसे दूसरे आगमोंसे मिलान करना चाहिए; और आत्मा शुद्ध है, आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आत्माके गुण इसप्रकार हैं, उसकी निर्मल स्पष्ट ज्योति ऐसी है, इत्यादि अनुप्रेक्षापूर्वक बारम्बार चिन्तवन करना चाहिए। शास्त्रसभामें जाकर घन्टे दो घन्टे तक धर्मकी बाते सुनते हैं और फिर घर जाकर विकथाओंमें लग जाते हैं यह अनुप्रेक्षा नहीं कही जा सकती। यहाँ पर धारणा और अनुप्रेक्षा दोनोंका प्रयोग किया गया है, इसमें धारणाका अर्थ वर्तमानमें सुनते समय याद रखना है और अनुप्रेक्षाका अर्थ याद रखी हुई बातको बादमें बारम्बार विचार करना।

समस्त कल्याणका मूल कारण आगमका यथार्थ निर्णय है। भगवानके द्वारा प्ररूपित परमागम शास्त्रोंका मात्र अभ्यास नहीं किन्तु यथार्थ अभ्यास करना चाहिए। यथार्थ अभ्यासका अर्थ है शास्त्रोंके कथनानुसार ठीक ठीक आशयको समझना। किन्तु अपनी अनुकूलताके अनुसार किसी भी अर्थको बिठा लेना यथार्थ अभ्यास नहीं कहा जा सकता।

जो आर्त रौद्र विहाय वर्त्ते धर्म-शुक्ल सुध्यानमें।
प्रतिक्रमण कहते हैं उसे जिनदेवके आख्यानमें ॥८९॥

अब कहते हैं कि–आगमके यथार्थ अभ्यासका अवसर दुर्लभ है भाई ! इस संसारका परिभ्रमण आजकलका नहीं है किन्तु अनादिकालीन है। इसमें जगतकी वकालत वगैरहका अभ्यास करते करते दम निकल गया, उसमें शास्त्राभ्यासका अवसर मिलना दुर्लभ है। अनादिकालसे तेरा अधिकांश समय तो एकेन्द्रिय पर्यायमें चला गया। त्रसकी स्थिति मात्र दो हजार सागरकी है। एकेन्द्रियके कालको देखते हुए त्रसका काल अत्यन्त अल्प है। मनुष्यपर्याय पाकर भी यदि आत्माका भान नहीं किया तो त्रसपर्यायका समय समाप्त होते ही फिर जीव एकेन्द्रियमें जायगा। एकेन्द्रियपर्यायमें जन्म-मरण करके जीवने अनन्त दुःख पाया है। यह मनुष्यत्त्व अत्यन्त दुर्लभ है। एकेन्द्रिय पर्यायमें मात्र स्पर्शन इन्द्रियसम्बन्धी किंचित् ज्ञान होता है, वहाँ अनन्त दुःख है। किसी छोटे राजकुंवरको खूब श्रृंगार करके विश्वके किसी सबसे बड़े कारखानेकी अग्निकी भट्टीमें डालकर यदि जीवित जला दिया जाय और उसे उस समय जो पीड़ा हो उससे भी अनन्तगुणी वेदना एकेन्द्रियदशामें प्रत्येक जीव अनन्तबार भोग चुका है।

उसके बाद दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और असैनी पंचेन्द्रिय प्राणियोंको भी तत्त्वविचार करनेकी शक्ति नहीं है। वहाँ पर सुख-दुःखके अनुभव हैं किन्तु विचारकी शक्ति नहीं है। असैनी पंचेन्द्रिय तक तो विचार करनेका अवसर ही नहीं है, वे सब मन रहित हैं। अब मनवाले प्राणियोंका विचार करें। उनमेंसे नरकगतिमें तो शास्त्राभ्यास होनेका योग ही नहीं है। किसी जीवने पहले सत्समागम किया हो और उसकी वासना कदाचित् रह गई हो तो वहाँ पर किसी जीवको आत्माका अंतरंग विचार हो सकता है, किन्तु वहाँ शास्त्रस्वाध्यायका अवसर तो मिल ही नहीं सकता। देवगतिमें जो नीची जातिके देव हैं वे तो बहुधा विषयसामग्रीमें ही अत्यन्त आसक्त रहते हैं। वे उसमें इस प्रकार लीन हैं कि उन्हें धर्मवासना ही नहीं होती, इसलिए उन्हें भी शास्त्राभ्यासका अवसर प्राप्त नहीं है। उच्चपदवाले देवोंमेंसे किसी किसीके धर्मकी विचारणा होती है, किन्तु विशेषतया जिन्होंने मनुष्यभवमें शास्त्राभ्यास आदि किया होता है। उस मनुष्यभवमें की गई धर्मसाधनाकी योग्यतासे उच्च पदवाले देव होते हैं।

असंख्यात जीवोंमेंसे कोई जीव बड़ा देव होता है उसे ऐसा लगता है कि अरेरे ! मनुष्यभवमें मेरी साधना अधूरी रह गई इसलिए यह अवतार हुआ; इसप्रकार उसके धर्मवासना उत्पन्न होती है। विशेषतया तो मनुष्यभवमें ही धर्मसंस्कार प्राप्त होता है। वहाँ पर 'विशेषतया'

मिथ्यात्व आदिक भावकी की जीवने चिर भावना।
सम्यक्त्व आदिक भावकी न करी कभी भी भावना ॥९०॥

शब्दका प्रयोग किया गया है, क्योंकि तीर्थंकरकी सभामें कोई पशु वगैरह भी धर्मोपदेश सुनकर आत्मज्ञान कर लेता है; किन्तु उसकी यहाँ मुख्यता नहीं है, इसलिए 'विशेषतया मनुष्यभवमें'–इस प्रकारका भाषाप्रयोग किया गया है।

मनुष्यपर्यायमें भी अनेक जीवोंकी आयु अत्यन्त अल्प होती है, उन जीवोंके पर्याप्तिकी पूर्णता ही नहीं होती, शरीरकी रचना ही पूर्ण नहीं हो पाती, वे माताके उदरमें ही मर जाते हैं। जिनके आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन छह प्रकारकी पर्याप्तियोंकी पूर्णता नहीं है ऐसे जीवोंको सत् शास्त्र सुननेका योग नहीं मिलता। और कदाचित् छह पर्याप्तियोंकी पूर्णता हो जाय, किन्तु वे अल्पायु हों तो वे बाल्य अवस्थामें ही मर जाते हैं। कदाचित् अधिक आयु मिली तो शुद्र इत्यादिक नीच कुलमें जन्म हुआ और यदि अच्छा कुल मिला तो इन्द्रियोंकी पूर्णता दुर्लभ हो गई, इन्द्रियोंकी पूर्णता हुई तो निरोग शरीर मिलना दुर्लभ है, और यदि वह भी मिल गया तो जहाँ सत् शास्त्र आदिकका योग है, उस ग्राममें जन्म होना दुर्लभ है, और यदि ऐसे स्थानमें जन्म हुआ तो भी जीवके धर्मवासना उत्पन्न होना दुर्लभ है। और यदि किसी जीवके धर्मवासना उत्पन्न हुई तो वहाँ भी सच्चे देव, गुरुका समागम पाना दुर्लभ है। यदि कुदेव, कुगुरुके समागममें लग गया तो मनुष्यभव ही बर्बाद हो जायगा, सच्चे देव-गुरुका समागम मिलना महान् दुर्लभ है। यदि दैवयोगसे किसीको सच्चे देव-गुरुका योग भी मिल गया तो वह पुण्यकी बाह्य क्रियामें लग गया, वह यह मान बैठता है कि अनेकविध पुण्यकी क्रियाके शुभरागसे ही धर्म होगा; इस प्रकार वह व्यवहारधर्ममें रत हो जाता है। सच्चे देव-गुरुका संयोग प्राप्त करके भी अनेक जीव सच्चा तत्त्वनिर्णय न करके शुभरागकी बाह्य क्रियाओंमें लगे रहते हैं और उसीमें धर्म मान बैठते हैं; इसप्रकार तत्त्व एक तरफ रह जाता है।

शास्त्रमें पाप करनेकी बात तो हो ही नहीं सकती, किन्तु अशुभभावको छुड़ानेके लिए शुभभावका कथन आता है, वहाँ यह जीव शुभमें ही संतोष मानकर उसको ही पकड़ बैठता है। किन्तु तत्त्वका यथार्थ निर्णय किये बिना जन्म-मरणका अन्त नहीं हो सकता। कोई जीव तत्त्वका निर्णय तो करे नहीं और व्यवहारकी वासनासे उसे फुरसत न मिले तो ऐसे धर्म नहीं होता। वह यह कहे कि इस धर्मचर्चाको समझनेका काम क्या है ? हमें समझ समझके आखिर करना तो यही है न ? किन्तु भाई, करना तो अन्तरंगमें कुछ और ही है। पहले तू वस्तुको तो समझ। वस्तुतत्त्वको समझ लेनेके बाद मालूम होगा कि तुझे क्या करना है।(क्रमशः)

जो जीव त्यागे सर्व मिथ्यादर्श-ज्ञान-चरित्र रे।
सम्यक्त्व-ज्ञान-चरित्र भावे प्रतिक्रमण कहते उसे ॥९१॥

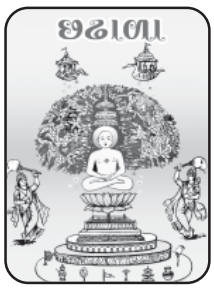

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(दूसरी ढाल, गाथा ९-१२)

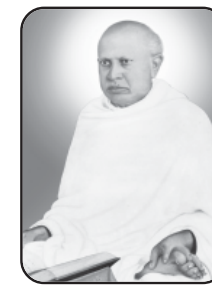

गृहीत मिथ्यादर्शनका स्वरूप और मिथ्यात्वपोषक कुगुरु-कुदेव-कुधर्मका सेवन छोड़नेका उपदेश

कुंदकुंदप्रभु प्रवचनसारमें कहते हैं कि–अरिहंतदेवके द्रव्य-गुण-पर्यायको जो जीव पहिचानता है वह स्वयंके आत्माके शुद्ध स्वरूपको भी पहिचानता है और उसका मोह क्षय होकर सम्यग्दर्शन होता है। अहा, अरिहंत भगवानका आत्माका द्रव्य शुद्ध चेतनमय, उसके गुण भी शुद्ध चैतन्यरूप और उसकी पर्याय भी शुद्ध चेतनरूप, उसमें कहीं राग नहीं है; जैसा वह आत्माका शुद्धस्वभाव है वैसा ही परमार्थसे आत्मा शुद्धस्वभावी है–ऐसी पहिचान करनेसे रागादि परभावोंके साथ एकत्वबुद्धि छूटकर परिणति अंतर्स्वभावमें झुकती है, शुद्धस्वभावके साथ पर्यायकी एकता होने पर मोहका अभाव हो जाता है अर्थात् सम्यग्दर्शन होता है। उस जीवने अरिहंतदेवको परमार्थ स्वरूपसे पहिचाना है, और सच्चे भावपूर्वक णमो अरिहंताणं उसने किया है।

अरिहंतको पहिचाने बिना उसका नाम ले उसमें तो नामनिक्षेप भी यथार्थ नहीं है; क्योंकि निक्षेप वह नयपूर्वक होता है और नय वह सम्यक् श्रुतज्ञानपूर्वक ही होता है; अज्ञानमें नय अथवा निक्षेप यथार्थ होता नहीं है। सर्वज्ञकी मूर्तिमें भी सर्वज्ञकी स्थापनाका निक्षेप है, अर्थात् वह भी राग-द्वेषके चिह्न बिनाकी होती है–'जिनप्रतिमा जिनसारखी' जिसको देखते ही सर्वज्ञ-वीतरागका स्वरूप लक्षमें आये ऐसी मूर्ति जैनशासनमें मान्य है और उसमें वास्तविक स्थापना निक्षेप संभवित है। समस्त दुनियाको जाननेवाले लेकिन करनेवाले किसीका नहीं, ऐसे सर्वज्ञ वीतरागदेव और उसकी प्रतिमा पूज्य है; उससे विरुद्ध कोई पूज्य नहीं है–इतनी पहिचान करे तब गृहीत मिथ्यात्वका नाश हो, और आत्माकी पहिचान करे तब अगृहीत मिथ्यात्वका नाश हो और तब सम्यग्दर्शन होता है।

प्रश्न :–प्रतिमा अजीवकी बनी हुई है, तो उसको आप जीव मानते हो ?

है जीव उत्तम अर्थ, मुनि तत्रस्थ हन्ता कर्मका।
अतएव है बस ध्यान ही प्रतिक्रमण उत्तम अर्थका ॥९२॥

पूज्य गुरुदेवश्री :–प्रतिमामें भगवानकी स्थापना है, और वहाँ भावनिक्षेपे भगवान कैसे हो उसका ज्ञान धर्मीको है, अर्थात् भगवानका स्मरण करके, और प्रतिमाजीकी उसमें स्थापना करके भक्ति-विनय-वंदन-पूजा करता है; वह योग्य है। वैसे तो उसमें शुभराग है लेकिन वह कोई मिथ्यात्व नहीं है। क्योंकि उसमें कोई देवका स्वरूप माना जाता नहीं है। जिसे भावनिक्षेप भगवानकी खबर नहीं है वह स्थापना निक्षेपका भी निषेध करते है, उन्होंने भगवानको पहिचाना नहीं है। अहा ! धर्मीके अंतरमें तो सर्वज्ञ परमात्मा रमते है, उसके श्रद्धा-ज्ञानमें परमात्मा विराजते है अर्थात् उनकी भक्ति आदिके भाव भी अलौकिक होते है...स्थापना निक्षेप भी उनको सत्य ही होता है। जैसे पिताके प्रेमवाला मनुष्य उसके चित्रमें स्थापना करके कहता है कि 'यह मेरे पिता है'—वहाँ पर सच्चे पिता और स्थापनारूप पिताकी, दोनोंकी खबर है, वैसे सर्वज्ञपद जिन्हें प्रिय है ऐसे साधक जीव, स्वयंके परम प्रिय धर्मपिता ऐसे सर्वज्ञदेवको पहिचानकर प्रतिमाजी आदिमें भी उनकी स्थापना करके बहुमान करता है कि 'यह मेरे भगवान, यह मेरे धर्मपिता, हम यह जिनवरके पुत्र'—इस प्रकार इष्टदेव प्रति धर्मीको परम बहुमान जागृत होता है।

देवगतिके जीवोंको भी 'देव' कहा जाता है, लेकिन वे देव कोई वीतरागी नहीं है। जगतमें अरिहंतदेव और सिद्धदेव ही सच्चे वीतरागी देव है। वह ही इष्ट परमेश्वर और परमात्मा है। अरे, मूर्ख जीव परमात्माको भूलकर पीपल आदि वृक्ष तथा बंदर आदि पशुमें भी देव मानकर पूजते है, अन्य अनेक प्रकारके रागी-द्वेषी कुदेवोंको देव मानकर पूजते है; अरे ! सच्चे वीतरागीदेवमें भी राग-द्वेषके कार्य होनेका मानकर उसका स्वरूप विकृत कर देता है– इन सभीको देवमूढ़ता है; उसमें अधिक अविवेक और मिथ्यात्वकी तीव्रता है। देव-गुरुका सच्चा स्वरूप व्यवहारसे पहिचाने, उनके कहे वीतरागधर्मकी श्रद्धा करे और पश्चात् वैसा अनुभव करने तक अभी तक न पहुँच सका हो–उसे मिथ्यात्वकी मंदता कहते है; लेकिन समझमें ही जिसे विपरीतता है और देव-गुरुका यथार्थ स्वरूपको जो जानता नहीं–मानता नहीं, विपरीत मानकर कुदेव-कुगुरु-कुधर्मका सेवन करता है उसे तो मिथ्यात्वकी तीव्रता है। उसे समझाते है,—अत्यंत करुणाबुद्धिसे समझाते है कि भाई, तेरा हित चाहता हो तो भगवान अरिहंतदेवके अतिरिक्त अन्य किसीको देव मानना छोड़ दे; हितका यथार्थ मार्ग बतलानेवाले भगवान अरिहंत ही है। ऐसे वीतरागी भगवानको छोड़कर मोही जीवोंको कौन

रे साधु करता ध्यानमें सब दोषका परिहार है।
अतएव ही सर्वातिचार प्रतिक्रमण यह ध्यान है ॥९३॥

भजे ?–जो तीव्र मोही हो वह ही पूजता है ! किन्तु जो विवेकी स्वयंका हित चाहता हो वह तो कुदेवको पूजता नहीं है। भाई ! मोही जीव तो तेरे जैसे है। उन्हें भजनेसे तो तेरा मोह ही पुष्ट होगा... और तुम संसारमें डूब जायेगा। अरे ! तू जो परम सुखरूप इष्टपदकी इच्छा करता है तो इष्टपदको प्राप्त जीव कैसे होते उसकी पहिचान कर। तेरे इष्टदेवको तो पहिचान। जो स्वयंके इष्टदेवको ही न पहिचाने उसकी मूर्खताकी क्या बात !

इस प्रकार कुदेव और सच्चे देवका स्वरूप पहिचानकर कुदेवका सेवन छोड़नेका उपदेश दिया। कुगुरु और कुदेवके अनुसार कुधर्मका सेवन भी छोड़नेके लिये उसके स्वरूपकी पहिचान कराते है। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ ८ का शेष भाग) (समयसार प्रवचन)

होना वह त्रिकाली द्रव्यमें नहीं है। सम्यग्दर्शनका विषय जो ध्रुव उसमें पर्यायरूप उत्पन्न होना या पर्यायरूप व्यय होना भी नहीं है। पर्यायकी अवस्थाका व्यय होना वह ध्रुव वस्तुमें नहीं है।

परमात्मस्वरूप है वह बंध और मोक्षके परिणाम को करता नहीं है ऐसा कौन कहता है ?–कि अनंत तीर्थंकरों ऐसा फरमाते है कि त्रिकाली भगवान प्रभु बंधको मोक्षके परिणाम और बंध-मोक्षके कारणको करता नहीं है। वह तो सदृश एकरूप ध्रुव वस्तु है और उत्पाद-व्यय तो विसदृश है। उत्पाद भाव और व्यय अभाव, वह भाव-अभाव वस्तुमें कहाँ है ?–

(पृष्ठ १३ का शेष भाग) (अध्यात्म संदेश)

पहुँचा जा सके। उस समय तो सफर करना बहुत मुश्किल था। और एक गाँव से दूसरे गाँव जाने में बहुत दिन लग जाते थे। उस समय आज के माफिक डाकव्यवस्था नहीं था, परंतु खेपिया द्वारा पत्र भेजते थे, जो बहुत दिनों बाद मिल पाते थे। बाह्य मिलाप होना वह अपने हाथकी बात नहीं है परंतु अंदर में स्वरूपके अनुभव की भावना करना, वह स्वाधीन है, अतः उसकी भावना लिख रहे हैं कि निरंतर स्वानुभव में रहियेगा। स्वानुभवमें रहनेका स्वयंको पसंद आया है इसलिये अन्य साधर्मीको भी उसीके लिये सिफारीश करते हुए लिख रहे हैं। स्वयंके भव में जिसकी रुचि हो गई है उसकी दूसरोंके लिये अनुमोदना कर रहे हैं। देखो, साधर्मीके साथ पत्र द्वारा भी कैसी भावना भा रहे हैं। (क्रमशः)

प्रतिक्रमणनामक सूत्रमें प्रतिक्रमण वर्णित है यथा।
होता उसे प्रतिक्रमण जो जाने तथा भावे तथा ॥९४॥

आनंद प्रगट करनेकी भावनावाला क्या करे ?

जगतके जीवोंको सुख चाहिये, सुख कहो या धर्म कहो । धर्म करना अर्थात् आत्मशांति चाहिये, ठीक करना है । ठीक कहाँ करना है ? आत्माकी अवस्थामें दुःखका नाश करके वीतरागी आनंद प्रगट करना है । वह आनंद ऐसा चाहिये कि जो स्वाधीन हो–जिसके लिये परका अवलम्बन न हो....ऐसा आनंद प्रगट करनेकी जिन्हें यथार्थ भावना हो उसे जिज्ञासु कहते है । स्वयंका पूर्णानंद प्रगट करनेकी भावनावाला जिज्ञासु प्रथम यह देखता है कि पूर्णानंद किसे प्रगट हुआ है । स्वयंको अभी ऐसा आनंद प्रगट नहीं, लेकिन स्वयंको जिसकी भावना है ऐसा आनंद अन्य किसीको प्रगट हुआ है और जिन्हें वह आनंद प्रगट हुआ है, उनको निमित्तसे स्वयं वह आनंद प्रगट करनेका यथार्थ मार्गको जाने–ऐसा जाना उसमें यथार्थ निमित्तोंकी पहिचान भी आ गई । इतना करे तब तक वह जिज्ञासु है ।

स्वयंकी अवस्थामें अधर्म-अशांति है उसका नाश करके धर्म-शांति प्रगट करना है । वह शांति स्वयंके आधारसे और परिपूर्ण चाहिये । ऐसी जिन्हें जिज्ञासा हुई है वह प्रथम ऐसा निश्चित करता है कि–मैं एक आत्मा मेरा परिपूर्ण सुख प्रगट करना चाहता हूँ, तो ऐसा परिपूर्ण सुख किसीको तो प्रगट हुआ होना चाहिये, यदि परिपूर्ण सुख-आनंद प्रगट न हो तो दुःखी कहा जाता है । जिन्हें परिपूर्ण आनंद और स्वाधीन आनंद प्रगट हुआ हो वह ही संपूर्ण सुखी है, वैसे सर्वज्ञ है....इस प्रकार जिज्ञासु स्वयंके ज्ञानमें सर्वज्ञका निर्णय करता है । परका करने-रखनेकी बात तो है ही नहीं, जब परसे पृथक् हुआ तब आत्माकी जिज्ञासा हुई है । यह तो परसे विमुख होकर जिन्हें स्वयंका हित करनेकी इच्छा जागृत हुई है ऐसे जिज्ञासु जीवकी बात है । परद्रव्य प्रति सुखबुद्धि और रुचि टाल दी वह पात्रता, और स्वभावकी रुचि और पहिचान होना वह पात्रताका फल है ।

दुःखका मूल भूल है । जिन्हें स्वयंकी भूलसे दुःख उत्पन्न हुआ है वह स्वयंकी भूलको समझकर पुनः न करे तो उसके दुःखका नाश होता है । अन्य किसीने भूल कराई नहीं है, इसलिये अन्य कोई स्वयंका दुःख टालनेको समर्थ नहीं है ।

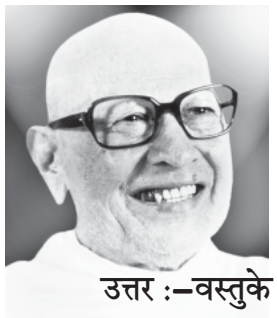

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–वस्तुके स्वरूपका निश्चय किसप्रकार करना चाहिए?

उत्तर :–वस्तुके स्वरूपका निश्चय इस प्रकार होना चाहिए कि ''इस जगतमें मैं स्वभावसे ज्ञायक ही हूँ तथा मुझसे भिन्न इस जगतके जड़-चेतन समस्त पदार्थ मेरे ज्ञेय ही है। विश्वके पदार्थोंके साथ मात्र ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्धसे विशेष मेरा अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है और न मैं किसीके कार्यको करता हूँ। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव-सामर्थ्यसे ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणमन कर रहा है, उसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।''

जो जीव ऐसा निर्णय करे, वही परके साथका सम्बन्ध तोड़कर उपयोगको निजस्वरूपमें लगाता है, इसलिए उसीको स्वरूपमें चरणरूप चारित्र होता है। इसप्रकार चारित्रके लिए प्रथम वस्तुस्वरूपका निर्णय करना चाहिए।

प्रश्न :–न्यायसे और तर्कसे तो यह बात जमती है, किन्तु अन्दरमें जानेका पुरुषार्थ क्यों नहीं हो पाता?

उत्तर :–अन्दर पहुँचनेका जितना पुरुषार्थ होना चाहिए उतना नहीं बन पाता, इसीलिए बाहर भटकना रहता है। अन्दर जानेकी रुचि नहीं, इसलिए उपयोग अन्दर जाता नहीं।

प्रश्न :–वर्तमानमें कर्मबंधन है, हीनदशा है, रागादिभाव भी वर्तते हैं, तो ऐसी दशामें शुद्धात्माकी अनुभूति कैसे हो सकती है?

उत्तर :–रागादिभाव वर्तमानमें वर्तते होने पर भी वे सब भाव क्षणिक हैं, विनाशीक है, अभूतार्थ हैं, झूठे हैं। अतः उनका लक्ष छोड़कर त्रिकाली ध्रुव शुद्ध आत्माका लक्ष करके आत्मानुभूति हो सकती है। रागादिभाव तो एक समयकी स्थितिवाले हैं और भगवान आत्मा त्रिकाल टिकनेवाला अबद्धस्पृष्टस्वरूप है। इसलिए एक समयकी क्षणिक पर्यायका लक्ष छोड़कर त्रिकाली शुद्ध आत्माका लक्ष करते ही–दृष्टि करते ही आत्मानुभूति हो सकती है।

प्रश्न :–ज्ञानी जीव सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होता है और सम्यक्त्व-सन्मुख जीव भी सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होता है। उन दोनोंकी विधिका प्रकार एक ही है या उनमें कोई विलक्षणता है?

भावी शुभाशुभ छोड़कर, तजकर वचन विस्तार रे।
जो जीव ध्याता आत्म, प्रत्याख्यान होता है उसे ॥९५॥

उत्तर :–ज्ञानी सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होता है, उसे तो आत्माका लक्ष हुआ है, आत्मा लक्षमें है और उसमें एकाग्रताका विशेष पुरुषार्थ करने पर विकल्प छूटकर निर्विकल्प होता है; परंतु स्व-सन्मुख जीवको तो अभी आत्माका लक्ष ही नहीं हुआ है, अतः उसने तो ज्ञानमें ऊपर-ऊपर (धारणा)से ही जाना है, प्रत्यक्ष नहीं हुआ। विकल्पसे आत्माका लक्ष बाहर-बाहरसे हुआ है, उसको अंदर पुरुषार्थ उग्र होने पर सविकल्पता छूटकर निर्विकल्पता होती है। इस प्रकार निर्विकल्प होनेकी विधिका प्रकार एक होने पर भी ज्ञानीने तो वेदनसे आत्मा जाना है और स्वसन्मुखवालेने बाहर-बाहर आनन्दके वेदन बिना आत्माको जाना है।

प्रश्न :–विकल्पसे निर्विकल्प होनेमें सूक्ष्म विकल्प रोकता है, उसका क्या करें?

उत्तर :–निर्विकल्प होनेमें विकल्प रोकता नहीं है। वास्तविकता यह है कि तू स्वयं अन्दरमें ढलने योग्य पुरुषार्थ करता नहीं है, इसलिए विकल्प टूटता नहीं है। विकल्पको तोड़ना नहीं पड़ता, किन्तु स्वरूपमें ढलनेका पुरुषार्थ उग्र होने पर विकल्प सहज ही टूट जाता है।

प्रश्न :–सम्यक्त्व-सन्मुख जीव तत्त्वके विचारमें रागको अपना जानता है क्या?

उत्तर :–सम्यक्त्व-सन्मुखजीव ऐसा जानता है कि राग है, वह मेरा अपराध है; राग मेरा स्वरूप नहीं, राग मैं नहीं,–ऐसा जानकर उसका लक्ष छोड़कर अन्दरमें जानेका–आत्मानुभव करनेका प्रयत्न करता है।

प्रश्न :–दृष्टिका जोर कहाँ देने पर सम्यग्दर्शन प्रगट होगा?

उत्तर :–ज्ञायक निष्क्रियतत्त्वके ऊपर दृष्टि डालो न! पर्यायके ऊपर जोर देनेसे क्या लाभ? यह मेरी क्षयोपशमकी पर्याय बढ़ी, यह मेरी पर्याय हुई—इस प्रकार पर्यायके ऊपर लक्ष देनेसे क्या काम बनेगा? पर्याय पलटने पर उस अंशमें त्रिकाली वस्तु थोड़े ही आ जाती है? अरे भाई! त्रिकाली ध्रुवदल जो नित्यानन्द प्रभु है, उसके ऊपर दृष्टिका जोर दो न! ज्ञानानन्द सागरकी तरंगें उछलती हैं, उस पर लक्ष डालो न! तरंगोंको न देखकर आनन्दसागरके दल ऊपर दृष्टि डालो अर्थात् अनादि क्षणिक पर्यायको ही लक्ष बना रहे हो, उसको छोड़ दो और त्रिकाली ध्रुव नित्य ज्ञायकदलके ऊपर दृष्टिको दृढ स्थापित करो तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी निर्मल पर्याय प्रगट होगी।

प्रश्न :–मोक्षमार्गमें धारणाज्ञानके बलसे आगे नहीं बढ़ते तो किसके बलसे आगे बढ़ते हैं?

उत्तर :–द्रव्यस्वभावके बलसे आगे बढ़ा जाता है। ज्ञायकभाव, चैतन्यभाव, द्रव्यभाव आदि जिसके ही नाम है–उसकी ओरका जोर आना चाहिए।

कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख; कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।
मैं हूँ वही, यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानिको॥९६॥

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *आत्मप्राप्तिके लिये त्याग–वैराग्यकी मुख्यता तो है न ?*

समाधान :—प्रथम आत्मा कैसे प्राप्त हो उसकी भावना, तत्त्वविचार, स्वाध्याय मुख्य होते हैं। त्याग–वैराग्यमें भी जितना स्वयं आत्माकी ओर झुके उतनी विरक्ति अंतरसे आती है और बाहरका रस उतर जाता है। अंतरमें यह सब अमुक प्रकारसे होता है। प्रथम सच्ची समझके लिये तत्त्वविचार, स्वाध्याय, श्रवण–मनन होते हैं। त्याग–वैराग्य तो जितना अंतरमेंसे विभावका रस छूटे उतना होता है। अंतरमें आत्माकी ओर ढले उतनी विरक्ति तो भूमिकानुसार होती ही है। उसके साथ सच्ची समझके लिये स्वाध्याय–विचार–मनन सब होते हैं, परन्तु अमुक विरक्ति तो होनी ही चाहिये।

प्रश्न :— *सत् सरल है, सुगम है, सहज है, सर्वत्र उसकी प्राप्ति है तो हमें क्यों ऐसा भासित नहीं होता ?*

समाधान :—सत् आत्माका स्वभाव है इसलिये सहज है। उसे कहीं बाहर ढूँढ़ने या माँगने नहीं जाना पड़ता और न वह परवस्तुमेंसे आता है। अपना स्वभाव है इसलिये सुगम है, सहज है, सरल है; परन्तु अनादिके विभावके अभ्यासके कारण दुर्लभ है। अपना स्वभाव है इसलिये सहज है। स्वयं ही है, कोई और नहीं इसलिये सहज है। प्रकट करे तो अन्तर्मुहूर्तमें होता है और नहीं करे तो अनन्तकाल बीत जाता है। अपनेको विभावका अनादि अभ्यास है इसलिये प्रकट नहीं होता। वैसे तो स्वभाव अपना है, अपनेमेंसे प्रकट होता है, बाहरसे नहीं आता , बाहर कहीं खोजने नहीं जाना पड़ता, अपनेमें ही भरा है उसे प्रकट करनेका है।

प्रश्न :— *बाहर कहीं न रुचता हो तब ही आत्मामें रुचे ऐसा है क्या ?*

समाधान :—बाहरमें नहीं रुचे तभी आत्मामें रुचता है। जिसे बाहरकी रुचि हो उसे आत्माकी रुचि नहीं होती। आत्माकी रुचि लगे उसे बाहरकी रुचि टूट जाती है। बाह्यमें रुचि और तन्मयता है उसे आत्माकी लगन नहीं है, वह आत्माकी ओर नहीं जा सकता। अनादिकालसे स्वयं बाह्यमें तन्मय होकर रहा है इसलिये आत्माकी लगन नहीं लगी है।

निजभावको छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही ॥९७॥

आत्माकी रुचि हो तभी आत्मामें प्रवेश किया जा सकता है। कई लोग कहते हैं न ? कहीं नहीं रुचता। तो अपने आत्माका अस्तित्व ग्रहण कर, वहाँ रुचे ऐसा है। वह तेरे रहनेका स्थान है, सुखका धाम है। स्वरूपको ग्रहण करनेका पुरुषार्थ कर, तो उसमेंसे सुख प्रकट होगा। बाहर न रुचे तभी अंतरमें प्रवेश हो सके ऐसा है। जिसे बाहर रुचे उसके लिये बाहरी संसार खड़ा ही है।

प्रश्न :— *अंतरमें आत्मसुख देखा नहीं तो विश्वास कैसे किया जाय ?*

समाधान :—सुखको देखा नहीं है, किन्तु सुखकी इच्छा है और बाहर कहीं चैन नहीं पड़ता। रुचता नहीं है, तो सुखमय एक आत्मपदार्थ जगत्में होना चाहिये। तू अपने विचारसे उसे ग्रहण कर, उसीमें सुख है। देव–शास्त्र–गुरु जो सुखका धाम बतला रहे हैं, मुनियों तथा अनन्त तीर्थंकरोंने जिसे प्रकट किया है और सर्व महापुरुषोंने भी वह बतलाया है। इसलिये तू विचार कर तो तुझे आत्मामें ही सुख लगेगा। वह अभी तुझे दिखाई नहीं देता, परन्तु तत्त्वका विचार करके देख तो तुझे भी दिखाई देगा। तुझे अपना आत्मा ही अंतरसे जवाब दे देगा। तू ज्ञाता अंतरमें विराजमान है उसमें सुख है। तू विचार कर तो प्रतीति आये बिना नहीं रहेगी। इस मार्गसे ही अनन्त तीर्थंकर मोक्ष गये हैं और उन्होंने मार्ग बतलाया है। उसका अंतरमें विचार कर तो विश्वास आये बिना नहीं रहेगा।

प्रश्न :— *जीव क्या राग–द्वेषमें उलझ जाता है ?*

समाधान :—अपनी रुचि नहीं है, रुचि मन्द है, इसलिये उलझ जाता है। पुरुषार्थ बढ़ाना, रुचि बढ़ानी; पुरुषार्थ मंद हो जाय तो बारम्बार उसका अभ्यास करना। बाहरकी कोई रुचि लगे तो उसका प्रयत्न कैसे करता रहता है ? बाहरकी रुचि हो और अपनी पसन्दके किसी कामकी जिम्मेदारी ली हो तो उसके पीछे लगकर काम करता ही रहता है, वैसे ही आत्मरुचि लगे और बारंबार उसके पीछे पड़कर प्रयत्न करे तो कार्य हो जाय। पुरुषार्थ किये बिना नहीं होता।

प्रश्न :— *उतावलसे आत्माका कार्य नहीं होता ?*

समाधान :—खोटी उतावलसे काम नहीं होता; स्वभावको पहिचाने तो होता है। धीरजसे होता है, प्रमाद करे तो नहीं होता। आकुलता करनेसे नहीं होता, परन्तु धीरजसे–शान्तिसे स्वभावको पहिचानकर यथार्थ रीतिसे विचार करे तो होता है। पुरुषार्थ करे, अपने स्वभावका ग्रहण करे तो होता है।

जो प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश बँधविन आत्मा।
मैं हूँ वही, यों भावता ज्ञानी करे स्थिरता वहाँ ॥९८॥

बाल विभाग

दृढ़ श्रद्धानी श्री वारिषेण

संसारके श्रेष्ठ वैभवसे संपन्न मगध देशके अंतर्गत राजगृह नामक नगर में सम्यक्त्व-भूषण संपन्न अनेक गुणालंकृत नीति-निपुण श्रेणिक राजा राज्य करते थे। तत्त्वदृष्टा, सुंदर, बुद्धिमान, शीलवान, सरलचित्त उसकी महारानी चेलना थीं। वारिषेण नामका उनका एक महाधर्मवत्सल पुत्र था, जो ध्यान और स्वाध्यायादिमें सदैव निरत रहता था।

इसी राजगृह नगरमें एक श्रीकीर्ति नामके राजश्रेष्ठी निवास करते थे। एक दिन वे वनक्रीड़ाके लिये नगरके बाहर उद्यानमें गये थे। सेठके गलेमें एक बहुत कीमती मणियोंका हार पड़ा था। वहाँ मगधसुंदरी नामकी वेश्या उस हार को देखकर मुग्ध हो गई। वह उस हारको प्राप्त किये बिना अपने जीवनको व्यर्थ समझने लगी। समस्त संसार उसे हारमय ही दिखाई देने लगा। वह उदास होकर घर लौट आयी।

जब रात्रिमें उस वेश्याका अनन्य प्रेमी विद्युतचोर उसके पास आया तो उसे उदास देखकर प्रेमसे पूछने लगा–''प्रिय ! इतनी उदास क्यों हो ? क्या किसीने कुछ कह दिया है ? मुझसे तुम्हारी ये उदासी देखी नहीं जाती।''

वेश्या कटाक्ष करती हुई बोली–''चलो देख लिया तुम्हारा प्रेम; मैं तो तुम्हें सच्चा प्रेमी तब जानूँगी, जब तुम मेरी प्रिय वस्तु मुझे लाकर दोगे। मैंने आज श्रीधर सेठके गले में एक सुंदर हार देखा है। आप जैसे प्राणवल्लभके होते हुए भी यदि मैं वह हार प्राप्त न कर सकी तो मेरा जीवन व्यर्थ है। मैं तभी अन्न-जल ग्रहण करूँगी, जब मुझे वह हार मिल जायेगा।'' –इस प्रकार विद्युतचोरको उसने अपने जाल में फँसा लिया।

''वेश्या विषवृक्षकी तरह व्यक्तिको मूर्छित कर देती है। वह जोंककी तरह व्यक्तिका ज्ञान और धन चूस लेती है और उसका सर्वस्व हरण कर छोड़ देती है। वेश्याके कटाक्षबाण जीवको घायल कर देते हैं। उसके नकली प्रेममें पागल होकर सब-कुछ अनर्थ करनेको तैयार हो जाता है।''

मगधसुंदरीकी कठिन प्रतिज्ञाको सुनकर विद्युतचोर हतप्रभ रह गया। वह कामान्ध होकर हार चुरानेको बाध्य हो गया। अपने जीवनका सब-कुछ भूलकर प्रेमिकाके प्रेमपांसमें

मैं त्याग ममता, निर्ममत्व स्वरूपमें स्थिति कर रहा।
अवलम्ब मेरा आत्मा, अवशेष वारण कर रहा ॥९९॥

बंधकर जब सेठ के महलमें घुस गया। अपनी कार्यकुशलतासे वह दिव्यहार चुराकर वहाँसे भागा, परंतु हारका दिव्य प्रकाश छिप न सका और सिपाहियोंने उसे देख लिया। उसे पकड़नेके लिये वे उसके पीछे दौड़ पड़े। विद्युतचोर भागता-भागता स्मशानकी ओर जा निकला। उस समय वहाँ राजा श्रेणिकका पुत्र वारिषेण कायोत्सर्गपूर्वक स्मशानमें ध्यानस्थ था। उसने मौका देखकर हारको वारिषेणके आगे डाल दिया और स्वयं वहाँसे भाग गया।

इतनेमें सिपाही भी वहाँ आ पहुँचे और वारिषेणको हारके समीप ध्यानस्थ खड़ा देखकर अचम्भित रह गये और हँसकर मजाक उड़ाते हुए बोले–

''वाह ! चाल तो खूब चली, ध्यानमें बैठे देखकर हम तुझे धर्मात्मा और निर्दोष मानकर छोड़ जायेंगे। रे धूर्त ! धर्मात्मा बनकर ऐसा नीच कृत्य करता है। चल, राजदरबारमें; वहाँ स्वयं ही तुझे तेरे किये की सजा मिलेगी।''

सिपाहियोंने तत्कार उन्हें बांध लिया और राजदरबारकी ओर चल पड़े।

(२)

''पापके उदयमें कभी-कभी निरपराध ज्ञानियोंको भी घोर अपमानका सामना करना पड़ता है। जिनका हृदय स्फटिकवत् निर्मल होता है, अशुभकर्मका उदय उनके जीवनमें भी कलंककी कालिमा लपेटना चाहता है।''

न्याय पिता-पुत्रको नहीं देखता। अपने पुत्र वारिषेणकी उस घटनाको सुनकर महाराजा श्रेणिकका हृदय क्रोधसे तमतमा गया, आँखसे क्रोधाग्निकी चिंगारियाँ निकलने लगीं। वे सिंहके समान गरजकर बोले–

''रे दुष्ट, पापी, कुलकलंक, धर्मात्मा और ध्यानीका ढोंग बनाकर लोगोंको ठगता है। देख लिया, तेरे धर्मका पाखण्ड। जिसे मैं सिंहासन पर बैठाकर राज-राजेश्वर बनाना चाहता था वह कुलकलंक ऐसा नीच निकला। इसे देखना भी मुझे कष्टकारी लगता है। अरे ! इस दुराचारीको यहाँसे ले जाकर इसके टुकड़े-टुकड़े कर डालो।''

अपने पुत्रके लिये ऐसी कठोर आज्ञा सुनकर प्रजा भयसे काँपने लगी, सबकी आँखोंमें पानी भर आया। पर किसका साहस जो राजा की बातका प्रतिवाद कर सके। ऐसा

मम ज्ञानमें है आतमा, दर्शन चरितमें आतमा।
है और प्रत्याख्यान, संवर, योगमें भी आतमा ॥१००॥

दण्ड-विधान सुनकर अन्यायियोंका कलेजा काँप गया, उन्होंने मन ही मन अपने दुष्कृत्य छोड़नेकी प्रतिज्ञा ले ली।

जल्लाद उसी समय निरपराध वारिषेणको बध्यभूमिमें ले गये। राजपुत्रको ले जाते समय उनके हाथ काँप रहे थे।

अहो ! जहाँ पुत्र के लिये पिताकी ही ऐसी कठोर आज्ञा हो, वहाँ अन्यकी तो बात ही क्या ? अरे ! अब इस राजकुमारकी रक्षा कौन करे ? परन्तु राजकुमार वारिषेणको तो एक अनादि-अनंत शुद्ध चैतन्यतत्त्व ही शरण था और उनका पुण्य ही उनका रक्षक। निर्जनवन,

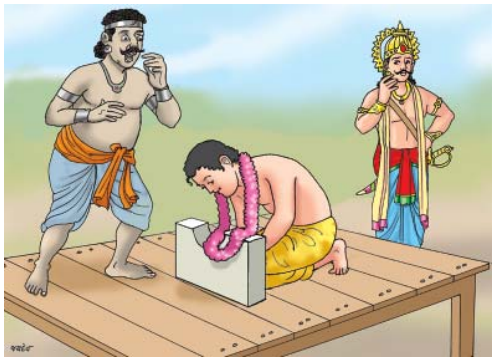

स्मशान, शत्रु, जल, अग्नि, पर्वत आदि अनेक विषम परिस्थितियोंमें केवल पुण्य ही जीवकी रक्षा करता है। ''पुण्यके प्रतापसे प्रतिकूल सामग्री भी अनुकूल परिणमन कर जाती है। हलाहल विष भी अमृत हो जाता है, अग्नि शीतल जलरूप हो जाती है, और तलवारोंके प्रहार पुष्पहार हो जाते हैं।''

जल्लदोंका हृदय भी राजपुत्र पर वार करनेके लिये काँप रहा था, पर वे राजाज्ञा पालन करनेके लिये मजबूर थे। उन्होंने ज्यों ही खड्ग निकाल कर वारिषेण की गर्दन पर वार किया, त्यों ही वारिषेणको लगा कि मानों किसीने उनके गलेमें पुष्पहार डाल दिया हो। अनेक तलवारोंके वार किये, पर वज्रकी तरह उनके गलेमें कुछ भी असर न हुआ और खड्ग प्रहार पुष्पहार बन गये। यह देखकर जल्लाद आश्चर्यचकित रह गया।

देव धर्मकी प्रभावना देखकर जय-जयकार करते हुए पुष्पवर्षा करने लगे। सारा जनसमूह वारिषेणको निरपराध जानकर और धर्मका प्रभाव देखकर जय-जयकार करने लगा। बिजलीकी तरह सम्पूर्ण मगधमें यह समाचार फैल गया। प्रजाजनके मुखकमल प्रसन्नतासे खिल उठे वह सब देखकर वारिषेण विचार करने लगे–

पुण्य-पाप फलमाहिं हरख–बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल पर्याय उपजि-विनसे फिर थाई॥ (क्रमशः)

मरता अकेला जीव, एवं जन्म एकाकी करे।
पाता अकेला ही मरण, अरु मुक्ति एकाकी करे॥१०१॥

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-०० से ६-२० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप
सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१९वीं बारका) सीडी प्रवचन
दोपहर : ३-१५ से ४-१५ : श्री प्रवचनसार संग्रह पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन
दोपहर : ४-१५ से ४-४५ : श्री जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि : ८-०० से ९-०० : बहिनश्रीके वचनामृत पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

✻ पूज्य बहिनश्रीकी पंचाह्निक उपकार-स्मृति ✻

उपकारमूर्ति स्वानुभवविभूषित भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी सांवत्सरिक उपकारस्मृति (समाधितिथि) वैशाख शुक्ला १४ दि. २२-५-२०२४ बुधवार से ज्येष्ठ कृष्णा-३ दि. २६-५-२०२४ रविवार तक—पाँच दिन सुवर्णपुरीमें श्री पंचपरमेष्ठी मंडल विधान पूजा एवं उनके ज्ञान, वैराग्य, स्वरूप साधना, वज्रोपम सम्यक् पुरुषार्थ एवं स्वानुभूतिमार्ग-प्रकाशनरूप अनेक उपकारोंका भावभीगा स्मरण सह विरहवेदनाके उदासीन वातावरणमें विविध ज्ञानोपासनापूर्वक सादगीसे मनाया जायेगा।

✻ समवसरण मंदिर ८३वाँ वार्षिक प्रतिष्ठा दिन ✻

ज्येष्ठ कृष्णा ६, ता. २९-५-२०२४ बुधवारके दिन सोनगढके श्री समवसरण मंदिरका ८३वाँ वार्षिक दिन पूजा-भक्ति सह मनाया जायेगा।

✻ स्वाध्यायमंदिर ८७वाँ वार्षिक प्रतिष्ठा दिन ✻

ज्येष्ठ कृष्णा ८, ता. ३१-५-२०२४ शुक्रवारके दिन सोनगढके श्री स्वाध्याय मंदिरका उद्घाटन एवं श्री समयसार स्थापनाका ८७वाँ वार्षिक दिन पूजा-भक्ति सह मनाया जायेगा।

बालकोंके लिये दिये गये अप्रैल-२०२४ के प्रश्नोंके उत्तर

(१) धर्म	(६) अनंत	(११) जैन	(१६) प्रभुता (पूजा)
(२) अहिंसा	(७) निश्चय	(१२) सम्यक्दर्शन	(१७) ११
(३) स्वरूप	(८) निशंक	(१३) उत्तम	(१८) दुःख
(४) मोक्ष	(९) अज्ञानी	(१४) मध्यम	(१९) उमा
(५) असंख्य	(१०) अरिहंत	(१५) १३ और १४	(२०) बहिरात्मा

श्री अमरेली, चित्तल, सावरकुंडला, कानातलाव, लाठी, मोटा आंकडिया दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल (मुख्य संयोजक दिनेशचंद्र दामोदरदास महेता) एवं स्थायी पुरस्कर्ताओं द्वारा

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनका ९२वाँ सम्यक्त्व जयंति महोत्सव सानंद संपन्न

९२वाँ सम्यक्त्वजयंति महोत्सव पूज्य गुरुदेवश्रीकी पवित्र साधनाभूमि अध्यात्म अतिशयक्षेत्र सुवर्णपुरी (सोनगढ)में ता. ३१-३-०२०२४ से ४-४-२०२४ तक भक्तिभावपूर्वक मनाया गया ।

उत्सवका दैनिक कार्यक्रम

यह मंगल महोत्सवमें प्रतिदिन क्रमशः सुबह पूज्य गुरुदेवश्री तथा पूज्य बहिनश्रीका मांगलिक, पूज्य बहिनश्रीकी विडियो-धर्मचर्चा, परमागममंदिरमें श्री चौसठ ऋद्धि पूजन विधान, विविध बेनरोंसे सुशोभित मंडपमें पूज्य गुरुदेवश्रीका 'श्री समयसार' पर सीडी प्रवचन, पूज्य बहिनश्रीकी विशेष भक्ति, धार्मिक शिक्षणवर्ग, दोपहरमें पूज्य गुरुदेवश्रीका श्री पंचास्तिकाय संग्रह पर सीडी प्रवचन, जिनेन्द्र भक्ति तथा सांजीभक्ति, रात्रिको पूज्य गुरुदेवश्रीका 'बहिनश्रीके वचनामृत' पर प्रवचन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम इस प्रकार दैनिक क्रम चलता था । सांस्कृति कार्यक्रमोंमें प्रथम दिन आराधना की देवी, दूसरे दिन परमागममंदिर प्रतिष्ठाके कुछ अंश और धार्मिक क्विझ, तीसरे दिन जम्बूद्वीप-बाहुबली प्रतिष्ठा महोत्सवके अंश तथा चौथे दिन 'मैं सोनगढ हूँ' नाटक दिखाये गये थे । उत्सवके सभी कार्यक्रमोंमें मुमुक्षुओंने उत्साहसे लाभ लिया था ।

पूज्य बहिनश्रीकी बधाई

ता. ४-४-२०२४ गुरुवारके दिन मंडपमें पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनके बाद प्रासंगिक उद्घोषणाएँ, आभारविधि तथा वर्धमान-सुरेन्द्र-लीबंडी-जोरावरनगर मुमुक्षु संघ द्वारा मनाये जानेवाला आगामी पूज्य गुरुदेवश्रीकी १३५वीं जन्मजयंतिका अग्रीम निमंत्रण दिया गया था । पश्चात् बहिनों द्वारा स्वागत गीत प्रस्तुत हुआ, पश्चात् प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीके चित्रपट समक्ष उनकी मंगल बधाईका विशेष कार्यक्रम रखा गया था । इस विशेष कार्यक्रमोंमें सभी मुमुक्षु भाईओं-बहिनोंने उत्साहसे भाग लिया था । इस प्रसंग पर भजनमंडलीके मधुर भक्ति-गीतोंसे वायुमंडलको भक्तिमय एवं अत्यंत रोचक बना दिया था ।

आयोजक द्वारा आवास एवं भोजन व्यवस्था सुंदर प्रकारसे की गई था । सर्व मंडलोंका उत्साह एवं आयोजन सराहनीय था । इन सभी छोटे मुमुक्षु मंडलोंको एकसाथ लानेमें (संयोजकके रूपमें) श्री अशोकभाई वाधरकी भूमिका प्रशंसनीय है ।

पूज्य गुरुदेवश्रीकी १३५वीं जन्मजयंतिकी मंगल पत्रिका लेखनविधि संपन्न

परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका १३५वाँ जन्म-जयंति महोत्सव कि जो वर्धमान, सुरेन्द्र, लींबडी, जोरावरनगर मुमुक्षु संघ द्वारा मनाया जानेवाला है उस महोत्सवकी निमंत्रण पत्रिका लेखनविधि ता. २१-४-२०२४ रविवार, महावीरजयंतिके मंगल दिन सानंद संपन्न हुई । प्रातः परमागममंदिरमें पूजन सभी मुमुक्षु श्रीमती सोनलबेन परेशभाई शाह के निवासस्थान कहाननगरमें गये थे । वहाँ पर भक्तिके साथ अक्षतसे पत्रिकाकी बधाई की गई । पश्चात् पत्रिकाको गाजे-बाजेके साथ उत्साहपूर्वक स्टार ऑफ इन्डियामें लायी गयी । वहाँ पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन और प्रासंगिक घोषणा पश्चात् आयोजक मुमुक्षु संघकी ओरसे श्री परेशभाई शाह द्वारा पत्रिकाका भावपूर्व वांचन किया गया तत्पश्चात् पत्रिका लेखनविधि मुमुक्षुओंकी उपस्थितिमें भजनमंडलीकी भक्तिसह सानंद संपन्न हुई ।

(१२९)

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

प्रश्न–३१ : जीव अरूपी है और धर्म-अधर्म-आकाश-काल द्रव्य भी अरूपी है तो फिर उसे जीव क्यों न कहा जाय ?

उत्तर : जीव अरूपी है वह सही, लेकिन जीवका लक्षण अरूपीपना नहीं है, जीवका लक्षण तो चेतना है; दूसरे चार अरूपी द्रव्योंमें चेतना नहीं है इसलिए वे जीव नहीं हैं।

प्रश्न–३२ : 'कागजमें अक्षर लिखे गये' उसमें कागजमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हुआ कि नहीं ? किस प्रकार ?

उत्तर : उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सभी वस्तुमें होता है। कागजमें जब अक्षर लिखे गये तब लिखनेरूप दशाकी उत्पत्ति हुई, कोरापना व्यय हुआ और कागज मुख्यरूपसे टीका रहा। इस प्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हुआ।

प्रश्न–३३ : छहों द्रव्यके लक्षण क्या ? छहों द्रव्यके लक्षण अलग-अलग किसलिये है ?

उत्तर : जीवका लक्षण चेतना, पुद्गलका लक्षण वर्ण, गंध, रस, स्पर्श अर्थात् रूपीपना; धर्मास्तिकायका लक्षण गतिमें निमित्त होना वह, अधर्मास्तिकायका लक्षण स्थिर होनेमें निमित्त होना वह, आकाश द्रव्यका लक्षण सभीको जगह देना वह और कालद्रव्यका लक्षण परिणमनमें निमित्त होना वह है। छहों द्रव्य पृथक्-पृथक् होनेसे छहोंके लक्षण भी पृथक्-पृथक् है। पृथक् वस्तुका लक्षण पृथक् ही होता है। लक्षणकी भिन्नता बिना वस्तुकी भिन्नता पहिचानी जा सकती नहीं है।

प्रश्न–३४ : काल द्रव्यकी संख्या कितनी है और वह किस प्रकार रहते है ? एवं काल द्रव्यके कितने भेद है ?

उत्तर : लोकाकाशके जितने असंख्यात प्रदेश है उतने ही काल द्रव्य है और लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेश पर एकेक कालद्रव्य रहा हुआ है। काल द्रव्यके दो भेद है, काल द्रव्यको निश्चयकाल कहते है और समय, आवलि, मुहूर्त, दिवस आदि कालद्रव्यकी पर्यायोंको व्यवहारकाल कहते हैं। काल द्रव्य अरूपी है।

प्रश्न–३५ : अस्तित्व गुणमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है या नहीं ?

उत्तर : होता है। नवीन पर्यायके रूपमें अस्तित्वका उत्पाद, पुरानी पर्यायके रूपमें अस्तित्वका व्यय और अस्तित्वगुणका कायम ध्रौव्यरूपसे टीका रहना—इस प्रकार अस्तित्वगुणमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

प्रश्न–३६ : किसीने आपको मोक्षके दो मार्ग बताये, एक बलून और दूसरा सलून उसमेंसे कौनसा मार्ग पसंद करोगे ?

उत्तर : मोक्षका मार्ग एक ही प्रकारका होता है और वह आत्मामें ही है। मोक्षका मार्ग कोई बाह्यकी वस्तु बलून या सलूनमें नहीं है। बाह्यके कोई साधनसे मोक्षका मार्ग बताये वह अज्ञानी है। हम तो आत्माश्रित मोक्षमार्गको ही पसंद करेंगे।

मोक्ष कोई बाह्यक्षेत्रमें नहीं है इसलिए मोक्षके लिए बाह्य साधनकी आवश्यकता नहीं है। मोक्ष तो आत्मामें ही होता है, इसलिए सम्यक्त्वरूपी सलून और चारित्ररूपी बलून वह ही मोक्षका मार्ग है।

प्रश्न–३७ : परमाणुके समूहको स्कंध कहा जाता है तो फिर स्कंधके समूहको क्या कहा जाता है ?

उत्तर : स्कंधके समूहको भी स्कंध ही कहा जाता है।

प्रश्न–३८ : छह द्रव्य है उसमेंसे अरूपी कितने और जड़ कितने ? अरूपी और जड़में क्या फर्क ? वह फर्क कहा पडा ?

उत्तर : छह द्रव्योंमें पुद्गलके अतिरिक्त पांच द्रव्यों अरूपी है और जीवके अतिरिक्त पांच द्रव्यों जड़ है; अरूपी अर्थात् वर्ण-गंध-रस-स्पर्श जिसमें न हो और जड़ अर्थात् जिसमें ज्ञान न हो वह; जीव द्रव्य अरूपी है लेकिन जड नहीं है, पुद्गल द्रव्य जड है लेकिन अरूपी नहीं है, अन्य चारों द्रव्य जड और अरूपी है।

प्रश्न–३९ : अरिहंत प्रभुको कितने प्रतिजीवी गुण प्रगट हुए हैं ? क्यों ?

उत्तर : अरिहंत प्रभुको एक भी प्रतिजीवी गुण प्रगट नहीं हुआ है क्योंकि उनको अभी चार अघातिकर्मका सद्भाव है; प्रतिजीवी गुण तो सर्व कर्मके नाशसे सिद्धप्रभुको प्रगट होता है। जैसे कि नामकर्मके अभावसे सूक्ष्मत्व, गोत्रकर्मके अभावसे अगुरुलघुत्व, आयुकर्मके अभावसे अवगाहनत्व और वेदनीयके अभावसे अव्याबाधत्व प्रगट होता है।

प्रश्न–४० : ज्ञान और चेतनामें क्या फर्क है ?

उत्तर : ज्ञान वह चेतनाका एक भाग है; चेतनाके दो प्रकार है–एक दर्शन और दूसरा ज्ञान, 'ज्ञान' कहते सिर्फ ज्ञान ख्यालमें आता है, जब कि 'चेतना' कहते उसमें ज्ञान-दर्शन दोनों आ जाते हैं।

प्रश्न–४१ : अस्तित्व और ध्रौव्यमें क्या फर्क है ?

उत्तर : अस्तित्वमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों आ जाते हैं और 'ध्रौव्य' कहते उसमें उत्पाद-व्यय नहीं आते।

प्रश्न–४२ : स्वभावका नाश होता है कि नहीं ?

उत्तर : जिस वस्तुका जो स्वभाव होता है उसका कभी नाश नहीं होता। यदि स्वभावका नाश हो जाय तो वस्तुकी ही नाश हो जाय, क्योंकि वस्तु और वस्तुका स्वभाव दोनों पृथक् नहीं है। जैसे की ज्ञान वह आत्माका स्वभाव है, यदि ज्ञानका नाश हो तो आत्माका ही नाश हो जाय; क्योंकि ज्ञान और आत्मा अलग नहीं है।

(१२९)

छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

(नीचे दिये गये प्रश्नोंके छहढालाकी चौथी ढालमेंसे मिलेंगे।)

(१) चौथी ढालमें सम्यक्ज्ञानकी ..... एवं देश ..... का उपदेश है।

(२) सम्यक्ज्ञान ..... को प्रकाशनेके लिये ..... समान है।

(३) सम्यक्दर्शन और ..... साथमें ही होता है।

(४) ..... होते ज्ञानकी आराधना पूर्ण होती है।

(५) जो स्व-परकी ..... और ..... की साधना करे उसे सच्चा ..... कहते है।

(६) ..... मय वस्तु स्वभावकी उपासना उसे ..... मार्ग कहते है।

(७) अनेकान्तमय मूर्ति सदा प्रकाशमान रहो ऐसा ..... शास्त्रके दूसरे कलशमें कहा है।

(८) वस्तुके .... वह ही पदार्थके धर्म है।

(९) आत्म वस्तुमें ..... और ..... का सामर्थ्य है।

(१०) मोक्षकी प्राप्ति हेतु सम्यक् .... का सेवन करना चाहिये।

(११) वस्तुके धर्म ..... की अपेक्षा रखते नहीं है।

(१२) ..... बिना मोक्ष नहीं होता।

(१३) रागसे पृथक् ऐसा ..... ही रागको जानता है।

(१४) राग और ..... का स्वभाव बिलकुल ..... है।

(१५) सम्यग्दर्शन बिना ..... दशा होती नहीं है।

(१६) ..... आचरण वह ..... का कारण है।

(१७) जीव अनादिकालसे ..... के कारण संसार-दुःखको भोग रहा है।

(१८) जीवके लिये ..... की प्राप्ति अपूर्व है।

(१९) सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति ..... मेंसे होती है।

(२०) जीवको ..... होते ही वह मोक्षमार्गका पथिक बन जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

• विकारसे निवृत हुए बिना वास्तविक निवृत्ति कहाँ ? और स्वरूपमे प्रवृत हुए बिना सच्ची प्रवृत्ति कैसी ? ।६२८।

• सर्वज्ञस्वभावमें गए बिना, अल्पज्ञपर्यायमें सर्वज्ञका स्वीकार नहीं होता।६२९।

• जिस ज्ञानके साथ आनन्द न आए–वह ज्ञान ज्ञान ही नहीं, अज्ञान है।६३०।

• प्रश्न :–शरीरमें रोग हो पलंग पर सोए पड़े रहना हो, तब धर्म कैसे हो?

उत्तर :–कौन सोया हुआ है ? आत्मा तो सदा ही असंयोगी-अरूपी-ज्ञानघन है; वह शरीरमें नहीं है–शरीरके कारणसे नहीं है। शरीर भले ही सोया हुआ हो; अन्तरमें जो (ज्ञायक प्रभु) परके अभावरूप-नित्यजागृत-चैतन्य-ज्योतिरूप है–सोया हुआ नहीं है। (जीव) स्वसे सत् है, परके आधारसे नहीं–यह अनेकान्त है। सर्वांग-निःशंकतामें कितनी शान्ति है। मेरा अस्तित्व परके कारणसे नहीं है; अतः परका चाहे कुछ हो, उस-ओर देखनेकी आवश्यकता ही नहीं है। मकान–शरीरादिका ध्यान न रखूँ तो वे गिर जायेंगे–ऐसा सोचनेकी आवश्यकता ही न रही। शरीर अपने कारणसे है, मेरे कारणसे नहीं–चिंता व्यर्थ है, जो ऐसी स्वतंत्रसत्ताका विश्वास नहीं करता; वह भटकता है।६३१।

• ज्ञेयोंकी आकृतिका स्मरण होते ही 'ये नहीं चाहिए' –इस प्रकारसे ज्ञेयका तिरस्कार करने पर अपनी ज्ञान-पर्याय, स्वभाव तथा ज्ञानवान आत्माका निषेध हो जाता है; जिसकी अज्ञानीको खबर ही नहीं होती।६३२।

• वर्तमान संयोगको देखने वाले स्वको चूकते हैं, अतः दुःखी होते हैं। संयोगके कारणसे कोई भी दुःखी-सुखी नहीं होता।६३३।

• ज्ञान संयम आत्माश्रित है, पराश्रित नहीं–यह जानते हुए ज्ञानी नित्य सहजज्ञान-पुँजमें स्वावलंबनसे स्थिर रहते हैं।६३४।

• भगवान आत्मा सदा अन्तर्मुख है। अति-अपूर्व, निरंजन और निजबोधका आधारभूत–ऐसा कारणपरमात्मा है; उसका सर्वथा, सहज अंतर्मुख अवलोकन द्वारा मुनिराज जो अनुभव करते हैं–उसे भगवान संवर और आलोचना कहते हैं।६३५।

३६
आत्मधर्म
मई-२०२४
अंक-९ ● वर्ष-१८

Posted at Songadh PO
Publish on 5-05-2024
Posted on 5-05-2024

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org